पुत्रियॉ परिवार का नाम और परम्परा आगे बढ़ाते हैं तथा यह चक्र निरन्तर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी जारी रहता हैं।

गतिविधि– 7.3

2011 की जनगणना से सम्बन्धित आंकडे एकत्रित करने के दौरान जनगणना अधिकारी घर–घर गये तथा प्रत्येक परिवार से अनेक सवाल पूछे। वो कौन से सवाल हैं जो जनगणना सम्बन्धी आंकडे एकत्र करते समय परिवारों से पूछे गये ? उनकी एक सूची बनाईये तथा चर्चा कीजिए।

परिवार के सामाजिक प्रकार्य

परिवार की समाज में एक केन्द्रीय स्थिति होती हैं। कुछ कार्य जैसे आर्थिक सेवाओं का उत्पादन, बच्चों तथा रोगी सदस्यों को संरक्षण प्रदान करने जैसे कार्य परिवार द्वारा किये जाते हैं। इस संस्था द्वारा आर्थिक आवश्यकताओं को भी पूरा किया जाता हैं। दंपति जिस परिवार की स्थापना करते हैं उसे समर्थन प्रदान करने के लिए एक साथ कार्य करते हैं। वे बच्चो की आवश्यकताओं जैसे भोजन, कपडे, आवास, शिक्षा, चिकित्सकीय देखभाल तथा मनोरंजन इत्यादि सुविधाऐं भी प्रदान करते हैं। परम्परागत समाज में केवल पति ही रोजी रोटी कमाता था तथा पत्नी घर को सम्भालने का कार्य करती थी, परन्तु आधुनिक समय में यह एक सामान्य सी बात बन गई है कि पति एवं पत्नी दोनो परिवार की आय में योगदान करते हैं तथा गृहस्थी की कार्यों में दोनो सहयोग करते हैं।

परिवार के कुछ प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1 **सन्तान उत्पत्तिः** परिवार यौनिक सम्बन्धों को नियन्त्रित करने के लिए एक संस्थागत ढांचा प्रदान करता हैं। बच्चों को जन्म देना परिवार का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है जो एक समाज तथा मानव प्रजाति की निरन्तरता के लिए आवश्यक हैं।

2 **पालन एवं पोषणः** ना केवल बच्चों को जन्म देना बल्कि बच्चों का पालन पोषण भी करना परिवार का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य हैं। परिवार में एक नये शिशु का आगमन प्रत्येक सदस्य को ना केवल खुशी देता है अपितु जिम्मेदारी का भाव भी उत्पन्न करता हैं। परिवार नवजात शिशु की देखभाल करता हैं। माता भी बच्चे के पालन पोषण के लिये परिवार के सदस्यों से सहयोग प्राप्त करती हैं। इस प्रकार परिवार अपने सदस्यों की आवश्यकता और जरूरतों को पूरा करता हैं।

3 **पहचान निर्माणः** व्यक्ति एक परिवार में एक विशिष्ट पहचान के साथ जन्म लेता हैं। परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो प्रस्थिति एवं भूमिका की निश्चित प्रणाली के भीतर एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। एक प्रस्थिति जो व्यक्ति परिवार के साथ जुड़कर अर्जित करता है वह उसे अन्य सदस्यों के साथ अन्तःक्रिया करने में मदद करती हैं।

4 **समाजीकरणः** परिवार अपने सदस्यों को समाज के नियम एवं प्रतिमान सीखने में

मदद करता हैं। परिवार एक संस्कृति का हस्तान्तरण करने वाली संस्था हैं जो समाज के नये सदस्यों को संस्कृति सीखाता हैं।

5 **सामाजिक नियन्त्रणः** परिवार सामाजिक नियन्त्रण की एक संस्था के रूप में कार्य करती हैं जो बच्चों पर नियन्त्रण रखता हैं। परिवार के वरिष्ठ सदस्य युवा सदस्यों के व्यवहार को नियन्त्रित करने के लिये स्वीकृत नियमों का पालन करवाते हैं। उपर्युक्त प्राथमिक प्रकार्यों के अतिरिक्त, परिवार कुछ द्वितीयक प्रकार्यों अथवा भूमिकाओं का भी निर्वाह करता हैं जैसे आर्थिक आवश्यकताओं का पूरा करना, प्राथमिक शिक्षा प्रदान करना, धार्मिक विश्वासों को हस्तांतरित करना, स्वास्थ्य की देखभाल करना तथा मनोरंजन के एक साधन के रूप में कार्य करना।

परिवार के स्वरूप/प्रकार

परिवार को निम्नलिखित प्रमुख आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता हैं:

1. सदस्यों की संख्या/आकार के आधार परः एकाकी, संयुक्त तथा विस्तृत परिवार।
2. निवास के आधार परः पितृस्थानीय, मातृस्थानीय तथा नवस्थानीय।
3. वंश के आधार परः पितृवंशीय एवं मातृवंशीय।
4. सत्ता के आधार परः पितृसत्तात्मक परिवार एवं मातृसत्तात्मक परिवार।

- निवास के नियम
- वंश के नियम
- सत्ता के नियम

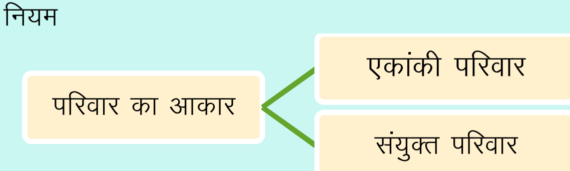

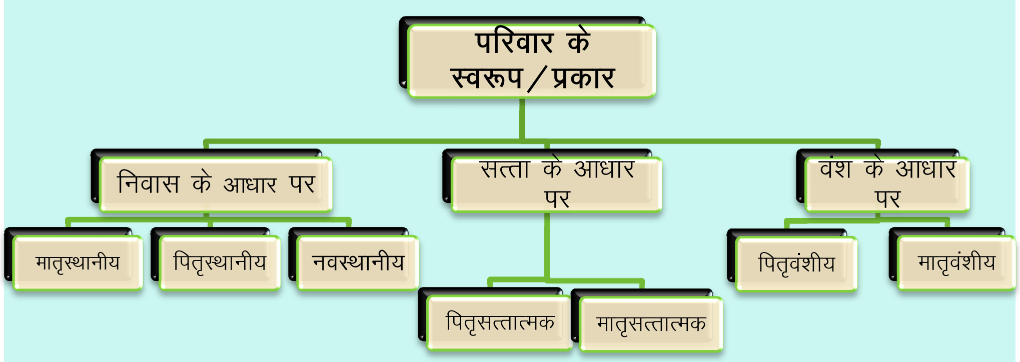

1. सदस्यों की संख्या/आकार के आधार पर

आकार के आधार पर परिवार एकाकी, संयुक्त या विस्तृत प्रकार का हो सकता हैं।

अ. एकाकी परिवारः इस प्रकार का परिवार सामान्य रूप से नगरीय क्षेत्रों में पाया जाता हैं जिसमें परिवार का आकार छोटा होता हैं तथा जो पति, पत्नी एवं उनकी अविवाहित सन्तानों से निर्मित होता हैं।

ब. संयुक्त परिवारः इस परिवार का आकार बडा होता हैं क्योंकि यह तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के रक्त तथा वैवाहिक सम्बन्धियों से निर्मित होता हैं। परिवार के सदस्य एक दूसरे को आर्थिक सहायता तथा अन्य सहायता प्रदान करते हैं तथा सभी एक छत के नीचे रहते हैं तथा सामान्य रसोई घर का प्रयोग करते हैं।

स. विस्तृत परिवारः परिवार के इस स्वरूप में दंपती के साथ कुछ निकट सम्बन्धी भी रहते हैं। निकट सम्बन्धियों में दंपती के एक से अधिक या कुछ रक्त सम्बन्धियों को सम्मिलित किया जाता है। परिवार का यह स्वरूप एकाकी परिवार के विस्तृत स्वरूप के रूप में जाना जाता हैं, उदाहरण के लिये, सामान्य व्यापार अथवा सामान्य सम्पत्ति के कारण भाईयों का एक साथ रहना।

एकांकी परिवार

संयुक्त परिवार

विस्तृत परिवार

2.. निवास के आधार पर

पति एवं पत्नी के निवास स्थान के आधार पर परिवार पितृस्थानीय, मातृस्थानीय या नवस्थानीय हो सकते हैं।

अ. पितृस्थानीयः निवास के इस नियम के अन्तर्गत नव दंपती विवाह के बाद वर के माता–पिता के घर में निवास करता हैं। यह प्रकार भारतीय परिवारों में एक आम बात हैं।

ब. मातृस्थानीयः निवास के इस नियम के अन्तर्गत दंपती पत्नी के माता–पिता के घर में निवास करता हैं। यह प्रकार उत्तर पूर्वी जनजातियों जैसे गारो तथा मेघालय की खासी जनजातियों में प्रचलित हैं।

स. नवस्थानीयः इसके अन्तर्गत नव विवाहित दंपती अपने द्वारा बनाये गये घर में माता–पिता से पृथक स्वतन्त्र रूप से रहते हैं। यह स्वरूप पश्चिमी देशों तथा भारत के नगरीय क्षेत्रों में प्रचलित हैं।

3. वंश के आधार पर

वंश के आधार पर परिवार को पितृवंशीय एवं मातृवंशीय में बांट सकते हैं।

अ. पितृवंशीयः जब पूर्वजों का निर्धारण पिता के वंश से होता है अर्थात जब वंश का निर्धारण पुरूष पक्ष की तरफ से होता हैं तो उसे पितृ वंशीय परिवार कहते हैं। इस वंश प्रणाली में पुत्र अपने पिता के नाम से जाने जाते हैं। सामान्यतः यह देखा गया है कि विश्व में पितृवंशीय परिवारों का प्रभुत्व हैं।

ब. मातृवंशीयः जब पूर्वजों का निर्धारण माता के वंश से होता हैं तो उसे मातृ वंशीय परिवार कहते हैं। मातृवंशीय प्रणाली में पुत्रियां अपनी माता के नाम से जानी जाती हैं। दूसरे शब्दो में, यदि कोई बच्चा किसी संस्कृति में अपनी मां का उपनाम प्राप्त करता है, अपने पिता का नहीं तो उसे मातृवंशीय परम्परा कहते हैं।

4. सत्ता के आधार पर

सत्ता के आधार पर परिवार पितृसत्तात्मक एवं मातृ– सत्तात्मक में बांट सकते हैं।

अ. पितृसत्तात्मकः इस प्रकार के परिवार मे पुरूष के पास परिवार की प्रमुख सत्ता होती हैं। वह औपचारिक प्रमुख होता हैं तथा परिवार की नियन्त्रण शक्ति उसके हाथ में होती हैं। यह एक ऐसा परिवार है जहां पिता के पास सत्ता होती हैं तथा परिवार का प्रत्येक सदस्य उसके निर्देशों का पालन करता हैं या उससे अनुमति प्राप्त करता हैं। यह स्वरूप अनेक संस्कृतियों में विशेष रूप से परम्परागत भारतीय परिवारों तथा चीन के परिवारों में सामान्य हैं।
ब. मातृसत्तात्मक परिवारः मातृसत्ता एक ऐसी सामाजिक प्रणाली हैं जिसमें परिवार और राजनीतिक सत्ता स्त्रियों के हाथ में होती हैं। परिवार के इस स्वरूप में मॉ की सत्ता सर्वेश्रेष्ठ होती हैं तथा समस्त शक्ति और प्रभाव उसके हाथ में होता हैं। वह परिवार की केन्द्रीय इकाई होती हैं। भारत मे यह केरल के नायर तथा उत्तर पूर्व में मेघालय की गारो एवं खासी जनजातियों में प्रचलित हैं।

परिवार प्रणाली में परिवर्तन

परिवार संस्था में समग्र विश्व में परिवर्तन हो रहे हैं। औद्योगिकीकरण, नगरीयकरण, पश्चिमीकरण तथा आधुनिक शिक्षा कुछ ऐसे कारक हैं जिसने परिवार की संरचना एवं प्रकार्यों दोनो में परिवर्तन उत्पन्न किये हैं। परिवार के आकार तथा अन्तःसम्बन्धों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये हैं, इसके साथ ही आधुनिक युग में इसकी भूमिका में भी अनेक परिवर्तन हुये हैं।

यह परिवर्तन निम्नलिखित हैं–

1. **लघु परिवारः** नगरीयकरण तथा औद्योगिकीकरण के कारण परिवार का आकार सिकुड़ गया हैं तथा सामान्यतः पति, पत्नी एवं उनकी अविवाहित सन्तानों तक सीमित हो गया हैं। अर्थात संयुक्त परिवार प्रणाली धीरे–धीरे एकाकी परिवारों से विस्थापित हो रही हैं क्योंकि युवा पीढ़ी अपने जीवन में बडों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करती।
2. **लोकतांत्रीकरणः** परिवार अत्यधिक उपयोगितावादी तथा लोकतांत्रिक हो रहे हैं। जैसे–जैसे एकाकी परिवारों की संख्या मे वृद्धि होती हैं परिवार में उत्पन्न समस्याएं पति एवं पत्नी के मध्य चर्चा का विषय बनती हैं तथा निश्चित की जाती हैं। निर्णय लेने की संयुक्त प्रक्रिया परिवार में उत्पन्न हुई हैं।
3. **परिवार का विघटनः** पीढ़ी अन्तराल के कारण उत्पन्न संघर्षो से युवा पीढ़ी परिवार से अलग रहना पसन्द करती हैं।
4. **कमजोर नातेदारी सम्बन्धः** परिवार के सदस्य आत्म–निर्भर तथा आत्म केन्द्रित हो गये हैं इसलिये नातेदारी सम्बन्ध परिवारों में आज उतने मजबूत नहीं है जितने पहले थे। भावनात्मक सम्बन्ध कमजोर हो रहे हैं तथा परिवार अत्यधिक व्यक्तिवादी होते जा रहे हैं।
5. **महिलाओं की भूमिका में परिवर्तनः** विवाह आयु में विलम्ब होना, आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा परिवार के नेतृत्व में वृद्धि होना इत्यादि ऐसे कारक हैं जिन्होंने महिलाओं की अभिवृत्तियों (सोच) तथा परिवार में उनकी भूमिका में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किये हैं। यद्यपि विवाह एवं मातृत्व महिलाओं के जीवन का एक हिस्सा बना हुआ है परन्तु महिलाएं स्वायत्ता तथा आत्म–प्रतिष्ठा को विकसित करने के लिए परिवार की इन भूमिकाओं को पुनः परिभाषित कर रही हैं।

6. **प्रकार्यो/ भूमिकाओं में परिवर्तनः** एक बड़े परिवार द्वारा निभाई जाने वाली पूर्व की भूमिकाओं को अब परिवार के बाहर की संस्थाओं ने ग्रहण कर लिया हैं। पालनाघर, देखभाल केन्द्र तथा वृद्धाश्रम इस परिवर्तन के कुछ उदाहरण हैं।
7. **विवाह विच्छेद में वृद्धि :** अब दंपतियों के मध्य पृथक्करण तथा विवाह विच्छेद बहुत सामान्य बात हो गई हैं जो अस्थिरता को उत्पन्न करती हैं तथा परिवार की संरचना एवं प्रकार्यो में भी परिवर्तन लाती हैं।
8. **परिवार के नये स्वरूपों की उत्पत्तिः** विवाह और सम्बन्धों के नये स्वरूप उभरे हैं जिन्होने परिवार को परिवर्तित किया है। उदाहरण के लिये सहजीवन विवाह (लिव इन रिलेशनशिप) जहां दंमती बिना विवाह के एक साथ रहते हैं। यह नगरीय क्षेत्रों में देखा जाता हैं।

परिवार की संरचना और प्रकार्यों में इन विभिन्न परिवर्तनों के बावजूद परिवार बच्चों के समाजीकरण में योगदान करता हैं तथा परिवार के सदस्यों को भावनात्मक सहयोग प्रदान करता है। आज भी परिवार सभी समाजों की निर्मायक इकाईयां होते हैं।

नातेदारी

विवाह, परिवार तथा नातेदारी अर्थात इन तीन अवधारणाओं का समूह परिवार सम्बन्धों का विस्तृत रूप हैं। परिवार सम्बन्ध नातेदारी सम्बन्धों के एक विस्तृत समूह का ही एक स्वरूप हैं। प्रत्येक समाज में नातेदारी सम्बन्धों की आधारभूत महत्ता होती हैं। सम्बन्धों की सामाजिक पहचान विवाह, प्रजनन या दत्तक सम्बन्धों के आधार पर निर्मित होती हैं। यह सबसे प्राचीन तथा दीर्घकालिक सामाजिक सम्बन्ध हैं।

नातेदारी प्रणाली व्यक्तियों का एक असंरचित समग्र नहीं हैं यह परिवार में व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों की एक संगठित प्रणाली हैं। मानव वैज्ञानिक नातेदारी प्रणाली को सामाजिक संरचना का एक अंग मानते हैं तथा अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों के रूप में इसके अध्ययन पर बल देते हैं।

नातेदारी के प्रकार

1. **सम्बन्धों के आधार पर**

नातेदारी समूह के सदस्य एक दूसरे से रक्त, विवाह तथा दत्तक सम्बन्धों के आधार पर सम्बन्धित होते हैं। इस आधार पर सामाजिक सम्बन्ध की प्रकृति निर्धारित होती हैं जो सदस्यों को एक दूसरे के नजदीक लाती हैं। सामाजिक समूह वैवाहिक, रक्त सम्बन्ध तथा काल्पनिक सम्बन्धों के आधार पर निर्मित होते हैं।

अ. **वैवाहिक नातेदार (विवाह से सम्बंधित):** इस नातेदारी में सदस्य विवाह के आधार पर एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, वे वैवाहिक नातेदार कहलाते हैं। उदाहरण के लिये पति, पत्नी, पत्नी की मॉ, सास, श्वसुर, दामाद इत्यादि।

ब. **समरक्त नातेदार (रक्त से सम्बंधित):** सदस्य रक्त के माध्यम से एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं इसलिये इन्हें समरक्त नातेदार कहा जाता हैं जैसे पिता, माता, पुत्र, पुत्री, भाई इत्यादि। समरक्त नातेदार एक सामान्य पूर्वज तथा सामान्य वंश को निर्मित करते हैं। यह सम्बन्ध बताते हैं कि किस प्रकार सामाजिक संपर्क और इनकी पहचान महत्वपूर्ण होती हैं। एक बच्चे को गोद लेने के माध्यम से चुनने का उदाहरण सामाजिक पहचान के नातेदारी के नियमों का उल्लंघन हैं।

स. **काल्पनिक नातेदारः** सदस्यों को चुनने के एक अन्य आधार पर काल्पनिक सम्बन्ध होते हैं अर्थात वे आपस में रक्त या विवाह (उदाहरण के लिए एक गॉव के निवासी) सम्बन्धों से जुडे नहीं होते। इन्हें काल्पनिक सम्बन्ध कहा जाता हैं। गॉव के सदस्य रक्त या विवाह द्वारा जुडे हुये नहीं होते परन्तु वे नातेदारी के काल्पनिक सम्बन्धों को निर्मित कर सकते हैं। यह नातेदारी के एक व्यापक क्षेत्र को निर्मित करने का एक तरीका हैं। ऐसे सदस्य काल्पनिक नातेदार कहलाते हैं।

2. निकटता तथा दूरी के आधार पर

:नातेदारी सदस्यों को एक व्यक्ति के साथ सम्बन्धों के संदर्भ में श्रेणी दी जा सकती हैं। नातेदारो के मध्य दूरी को नातेदारी की मात्रा के आधार पर समझा जाता हैं। निकटता और दूरी के सम्बन्धों के आधार पर नातेदार को तीन प्रकारों मे बांटा जा सकता हैं– प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक नातेदार।

अ. प्राथमिक नातेदार ये वे नातेदार होते हैं जो निकटता से जुडे होते हैं अर्थात इनमें प्रत्यक्ष सम्बन्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त ये रक्त सम्बंधी प्राथमिक नातेदार हो सकते हैं अर्थात पिता से सम्बन्धित होते हैं। अथवा ये प्राथमिक वैवाहिक नातेदार हो सकते हैं अर्थात मॉ से सम्बन्धित होते हैं। ऐसे सम्बन्धों की संख्या आठ है। जिनमें पति–पत्नी, पिता–पुत्र, पिता–पुत्री, माता–पुत्री, मॉ–पुत्र, छोटी एवं बडी बहिन, छोटे एवं बडे भाई तथा भाई एवं बहिन सम्मिलित हैं।

ब. द्वितीयक नातेदारः परिवार के ये सदस्य प्राथमिक नातेदारों के माध्यम से जुडे होते हैं, उदाहरण के लिये पिता की तरफ के नातेदार जैसे व्यक्ति के पिता का भाई द्वितीयक रक्त सम्बन्धी नातेदार है जबकि

व्यक्ति की सौतेली मॉ व्यक्ति की द्वितीयक रक्त सम्बन्धी नातेदार हैं। इसी तरह व्यक्ति की मॉ का भाई तथा मॉ का सौतेला पिता व्यक्ति का द्वितीयक वैवाहिक नातेदार हैं। इस प्रकार, व्यक्ति के पिता का पिता, माता का पिता, भाई की पुत्री, पिता की बहिन, बहिन का पति, द्वितीयक नातेदारों के कुछ उदाहरण हैं। द्वितीयक नातेदारों की संख्या 33 हैं।

स. तृतीयक नातेदारः परिवार के ये सदस्य द्वितीयक नातेदारो के माध्यम से जुडे होते हैं। प्रत्येक द्वितीयक नातेदार के प्राथमिक नातेदार होते हैं जो एक व्यक्ति के ना ही प्राथमिक और ना ही द्वितीयक नातेदार होते हैं। इन्हें तृतीयक नातेदार के रूप में जानते हैं, उदाहरण के लिये पति के भाई की पत्नी (भाभी), पत्नी की बहन का पति (मौसा), प्रथम सहोदर इत्यादि। सरल शब्दों में, तृतीयक नातेदार वे व्यक्ति होते हैं जो द्वितीयक नातेदार के प्राथमिक नातेदार होते हैं। इस प्रकार के नातेदारों में परदादा–परदादी, परनाना–परनानी, सभी चाचा–ताऊ की पत्नियां, भतीजा–भतीजी एवं भांजा–भांजी इत्यादि को सम्मिलित किया जाता हैं।

बॉक्स–2

प्रेम चौधरी (2004) ने अपने अध्ययन, 'हरियाणा में जाति पंचायत एवं विवाह पर नियंत्रण' में गांव बर्हिविवाह के नियमों को विस्तार से समझाया हैं। एक गांव में रहने वाले सदस्य भाई एवं बहिन की नैतिकता में बंधे होते हैं। यहां यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि गांवों में *भाई* अथवा *बहिन* शब्दों का प्रयोग किया जाता हैं चाहे वे आपस में रक्त सम्बन्धों से जुडे हुए ना हो। इस प्रकार के निषेध *भाईचारा* स्थापित करते हैं। बिरादरी एक ऐसी आदर्श अवधारणा है जो काल्पनिक नातेदारी सम्बन्धों का प्रतीक है। कुछ उत्तर भारतीय गांवों में *धर्म भाई* अथवा *धर्म बहिन* के रूप में व्यक्तियों को स्वीकार करने का प्रचलन हैं। तदानुसार, भाईदूज एवं *रक्षाबन्धन* के अवसर पर अधिकारों एवं उत्तरायित्वों का निर्वाह किया जाता हैं।

नातेदारी की शब्दावली

नातेदारी प्रणाली सांस्कृतिक प्रतिमानों/नियमों से नियन्त्रित होती हैं। प्रत्येक संस्कृति समूह में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता हैं जो रक्त, विवाह, दत्तक या काल्पनिक नातेदारी सम्बन्धों के आधार पर एक दूसरे के नातेदार हो सकते हैं। नातेदारी शब्दावली दो प्रकार की हो सकती हैं– वर्गात्मक एवं वर्णनातमक शब्दावली।

वर्गात्मकः वर्गात्मक प्रणाली के अन्तर्गत अनेक नातेदार सदस्य जो रक्त सम्बन्धी या वैवाहिक सम्बन्धी हैं, के लिए एक सामान्य शब्द का प्रयोग किया जा सकता हैं, उदाहरण के लिये अंकल शब्द का प्रयोग पिता के भाई एवं माता के भाई दोनो के लिये किया जा सकता हैं। यहां मुख्य उद्देश्य नातेदारी की पहचान के बजाय सम्बन्ध की व्याख्या करना हैं। कुछ जनजातीय समाजो में मामा/मामी और चाचा/चाची के लिये एक सामान्य शब्द का प्रयोग किया जाता हैं उदाहरण के लिये 'अप्पू' शब्द का प्रयोग चाचा, ताऊ, फूफा, मौसा और मामा के लिये किया जाता हैं।

वर्णनात्मकः वर्णनात्मक प्रणाली में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता हैं जो यथार्थ सम्बन्धों को व्यक्त करते हैं, उदाहरण के लिये पिता एक वर्णनात्मक शब्द हैं। अन्य उदाहरण जैसे मामा अर्थात मॉ का भाई, चाचा अर्थात पिता का भाई, नानके अर्थात् नाना की तरफ के लोग (नाना/मॉ का पिता), जो नाना के घर में रहते हैं और मॉ की तरफ के नातेदार को अभिव्यक्त करते हैं अथवा दादके अर्थात वे लोग (दादा/पिता के पिता) जो दादा के घर में रहते हैं और पिता की तरफ के नातेदारों को अभिव्यक्त करते हैं।

परिवर्तित होते नातेदारी सम्बन्ध

ग्रामीण और जनजातीय समाजों में नातेदारी प्रणाली बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। पिता एवं माता दोनो की तरफ की अनेक पीढ़ियों के नातेदार निकट सम्पर्क में रहते हैं। औद्योगिकीकरण तथा नगरीयकरण के प्रभाव से, हांलाकि, नातेदारी प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं। परिवार का आकार बहुत छोटा हो गया है, विस्तृत परिवार प्रणाली धीरे–धीरे समाप्ति की ओर हैं तथा ऐसे नातेदारों की संख्या भी कम हुई हैं जिनसे पहले नियमित रूप से सम्पर्क बने रहते थे। आज व्यक्तिवादिता ने लोगो को आत्म केन्द्रित बनने तथा केवल अपने निकट तथा प्राथमिक नातेदारों के लिये सोचने पर मजबूर/बाध्य किया हैं। इससे निश्चित रूप से नातेदारी सम्बन्ध सिकुड़ गये हैं अथवा सीमित हुए हैं हांलाकि, हम विवाह और मृत्यु के समय देखते हैं कि आज भी नातेदार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इससे स्पष्ट होता हैं कि नातेदारी प्रणाली आज भी वैसे ही प्रासांगिक बनी हुई हैं जैसे मानव समाज में परिवार संस्था की निरन्तरता बनी हुई हैं।

निष्कर्ष

यह अध्याय परिवार, विवाह तथा नातेदारी के विभिन्न पक्षों की विवेचना से सम्बन्धित हैं जो आपस में अन्तःसम्बन्धित हैं। इसमें जिन मुख्य बिन्दुओं पर चर्चा की गई है वो इस प्रकार थे :

- विवाह पुरूष एवं महिला के मध्य एक स्थाई सम्बन्ध हैं।

- निकट नातेदारो के मध्य विवाह एक निषेध हैं।
- परिवार समाज की सार्वभौमिक एवं मूलभूत इकाई हैं।
- परिवार एवं विवाह अन्तःसम्बन्धित हैं।
- परिवार जैविकीय, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक क्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं।
- परिवार का आकार एवं स्वरूप सत्ता, निवास, वंश, पूर्वज तथा विवाह के प्रकारों के आधार पर निर्धारित होता हैं।
- नातेदारी मानव समाजो की एक मूलभूत विशेषता तथा आधार हैं।
- सभी नातेदारी प्रणालियां एक नातेदारी शब्दावली को प्रदर्शित करते हैं।
- औद्योगिकीकरण, नगरीयकरण, प्रवसन तथा विचाराधारा जैसे कारको ने विवाह, परिवार तथा नातेदारी संस्थाओं में परिवर्तन उत्पन्न किये हैं।

शब्दावली

वैवाहिक नातेदारः विवाह आधारित सम्बन्ध जैसे पति एवं पत्नी।

वर्गात्मक सम्बन्धः एक सामान्य शब्दों से जुडे अनेक नातेदारो का समूह।

रक्त सम्बन्धः रक्त पर आधारित सम्बन्ध जो सामान्य पूर्वज से जुडे होते है।

वंशः उत्तराधिकार के अधिकारों को निश्चित करने के लिये पूर्वज निर्धारित करने की प्रणाली।

विवेचनात्मक सम्बंधः एक व्यक्ति के साथ वास्तविक सम्बन्ध प्रदर्शित करने वाले नातेदारों का समूह।

अन्तःविवाहः एक निश्चित समूह के मध्य विवाह, उदाहरण के लिये जाति, नातेदारी।

बर्हिविवाहः समूह से बाहर विवाह करने की प्रवृत्ति।

विस्तृत परिवारः एक ऐसा परिवार जिसमें पति एवं पत्नी अपने अभिभावकों सहित पिता की तरफ के एक या दो नातेदारो के साथ रहते हैं।

अनुलोम विवाहः पुत्री का विवाह एक उच्च वर्ग या जाति के लडके के साथ करना।

प्रतिलोम विवाहः पुत्री का विवाह निम्न वर्ग या जाति के लडके के साथ करना।

निकटाभिगमन निषेधः ऐसी प्रथा जो प्राथमिक नातेदारो के मध्य विवाह को प्रतिबंधित करती हैं।

संयुक्त परिवारः ऐसा परिवार जिसमें तीन पीढ़ी या उससे अधिक के सदस्य एक साथ एक ही छत के नीचे रहते हैं तथा एक सामान्य रसोई घर का प्रयोग करते हैं।

नातेदारीः वास्तविक या काल्पनिक रक्त सम्बन्ध पर आधारित सामाजिक सम्बन्ध।

मातृसत्तात्मकः जहां एक परिवार में सत्ता मॉ के माध्यम से नियन्त्रित होती हैं।

मातृवंशीयः वंश का निर्धारण महिला सदस्य की ओर से होना।

मातृस्थानीयः वर एवं वधु विवाह के बाद वधु के परिवार में जाकर रहे।

एकविवाहः एक पुरूष का एक स्त्री के साथ विवाह करना।

एकाकी परिवारः पति, पत्नी तथा अविवाहित सन्तानों से निर्मित परिवार ।

पितृसत्तात्मकः जहां एक परिवार में सत्ता पिता के माध्यम से नियन्त्रित होती हैं।

पितृवंशीयः वंश का निर्धारण पुरूष सदस्य की ओर से होना।

पितृस्थानीयः वर एवं वधु विवाह के बाद वर के परिवार में रहे।

बहुविवाहः एक पुरूष का अनेक स्त्रियों के साथ अथवा एक स्त्री का अनेक पुरूषों के साथ विवाह करना।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्र 1–15 शब्दों में दीजिए।

1. अन्तः विवाह से आप क्या समझते हैं?
2. विवाह संस्था की उत्पत्ति के कोई दो महत्वपूर्ण आधार बताईये।

3. एक विवाह किसे कहते हैं ?
4. साली विवाह किसे कहते हैं ?
5. बहुपति विवाह के प्रकार बताईये।
6. बहुपत्नी विवाह के प्रकार बताईये।
7. अन्तः विवाह के कुछ उदाहरण दीजिए।
8. विवाह को परिभाषित कीजिए।
9. परिवार के दो प्रकार्य बताईये।
10. आकार के आधार पर परिवार के स्वरूपों के नाम लिखिए।
11. सत्ता के आधार पर परिवार के स्वरूपों के नाम लिखिए।
12. वैवाहिक सम्बन्ध किसे कहते हैं?
13. संयुक्त परिवार से आप क्या समझते हैं ?
14. नातेदारी से आप क्या समझते हैं ?
15. नातेदारी के प्रकार बताइये।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 30–35 शब्दों में दीजिए।

1. संस्था शब्द से आप क्या समझते हैं ?
2. अधिमान्य नियम किसे कहते हैं ?
3. अनुलोम तथा प्रतिलोम क्या हैं ?
4. बहुविवाह के दो प्रकारों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. भ्रातृत्व बहुपति विवाह किसे कहते हैं ?
6. निकटाभिगमन निषेध की चर्चा कीजिए।
7. गोत्र किसे कहते हैं ?
8. सलिंग एवं विलिंग सहोदर विवाह के मध्य अन्तर कीजिए।
9. निकटता और दूरी के आधार पर नातेदारी को परिभाषित कीजिए।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 75–85 शब्दों में दीजिए।

1. महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं पर संक्षेप में चर्चा कीजिए।
2. विवाह की महत्वपूर्ण विशेषताएं कौन सी हैं ?
3. विवाह के स्वरूपों के रूप में एकविवाह एवं बहुविवाह के मध्य अन्तर कीजिए।
4. परिवार के प्रकार्यों को समझाइये।
5. अ– अनुलोम ब– प्रतिलोम स–लेवीरेट/देवर विवाह द–सोरोरेट/ साली विवाह जैसी अवधारणाओं की व्याख्या कीजिए।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 250–300 शब्दों में दीजिए।

1. संस्था से आप क्या समझते हैं ? इसकी विशेषताऐं बताईये।
2. एक सामाजिक संस्था के रूप में विवाह पर टिप्पणी लिखिए।
3. विवाह के विभिन्न प्रकारों अथवा स्वरूपों को विस्तार से समझाइये।
4. विवाह को परिभाषित कीजिए। जीवन साथी चुनने के नियमों को विस्तार से लिखिए।
5. परिवार किसे कहते हैं? परिवार की मूलभूत विशेषताऐं कौन सी हैं?
6. परिवार के विभिन्न प्रकारों को विस्तार से समझाइये।
7. समकालीन समय में परिवार संस्था में होने वाले परिवर्तनों पर प्रकाश डालिए।
8. नातेदारी को परिभाषित कीजिए तथा इसके प्रकारों को विस्तार से समझाइये।
9. सामाजिक जीवन में नातेदारी के महत्व को समझाइये।
10. वैवाहिक तथा रक्त सम्बन्धों में अन्तर कीजिए।

अध्याय
8

राजनीति, धर्म, अर्थ प्रणाली एवं शिक्षा

मुख्य बिन्दुः

8.1 राजनीति संस्थाएं
8.2 धर्म संस्थाएं
8.3 अर्थ प्रणाली संस्थाएं
8.4 शिक्षा संस्थाएं

परिचय

जैसा कि हमने पूर्व के अध्याय में सीखा हैं, सामाजिक संस्थाओं को नियम–निर्देशित व्यवहार के स्थापित अथवा मानकीकृत प्रतिमानों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इनमें परिवार, विवाह, नातेदारी, शिक्षा तथा धर्म के साथ आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाएं सम्मिलित होती हैं। हम परिवार, विवाह एवं नातेदारी संस्थाओं की चर्चा पहले ही कर चुके हैं। इस अध्याय में हम सामजिक संस्थाओं के रूप में राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्म तथा शिक्षा की चर्चा करेंगे।

राजनीतिक संस्थाएं

राजनीतिक प्रणाली समाज की एक उप–प्रणाली है। यह उन भूमिकाओं को परिभाषित करती हैं जिन्हें मनुष्य कानून व्यवस्था को बनाये रखने के लिए ग्रहण करता हैं। राजनीति एवं समाज के बीच घनिष्ठ सम्बंध होता हैं। समाजशास्त्र में राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन शक्ति, नेतृत्व, सत्ता, मतदान व्यवहार जैसी अवधारणाओं को समझने में तथा किस प्रकार ये अवधारणाएं जाति, वर्ग, प्रजाति, क्षेत्र एवं धर्म से प्रभावित होती हैं, को समझनें में हमारी सहायता करता हैं। राजनीतिक संस्थाएं एक समाज के भीतर शांति एवं व्यवस्था को प्रेरित करने के लिए शक्ति का प्रयोग करने वाली एजेंसी अथवा अभिकरण होती हैं।

राजनीतिक संस्थाएं समाज में शक्ति के वितरण से सम्बंधित होती हैं। राजनीतिक संस्थाओं को समझने के लिए दो अवधारणाएं आवश्यक हैं–शक्ति एवं सत्ता। मैक्स वेबर इन दोनो के मध्य अन्तर करते हैं।

शक्ति

शक्ति व्यक्तियों अथवा समूहों द्वारा अपनी इच्छाओं को पूरा करने की क्षमता हैं, चाहे दूसरे उसका विरोध करे। इसका अभिप्राय हैं कि जो लोग शक्ति पर नियंत्रण रखते हैं वे दूसरों की कीमत पर ऐसा करते हैं। किसी समाज में शक्ति की एक निश्चित मात्रा होती हैं तथा कुछ अधिक शक्तिशाली व्यक्तिगत समूह या संगठन अपने प्रभाव का प्रयोग कम शक्तिशाली लोगो पर करते हैं। इस प्रकार, शक्ति अपने तथा अन्यों के लिए निर्णय लेने और यह देखने की क्षमता हैं कि उनके द्वारा लिए गये निर्णयो का दूसरे पालन करे। उदाहरण के लिए, परिवार के मुखिया तथा किसी कंपनी के जरनल मैनेजर के पास क्रमशः परिवार एवं संगठन के अन्य सदस्यों पर नियंत्रण करने की शक्ति होती हैं।

सत्ता

शक्ति की अवधारणा का प्रयोग सत्ता के माध्यम से होता हैं। सत्ता शक्ति का वह स्वरूप हैं जो वैध, सही और उचित माना जाता हैं। यह वैधता पर आधारित हैं तथा संस्थागत होता हैं। सत्ता में पदासीन लोगो द्वारा शक्ति का प्रयोग किये जाने पर सामान्यतः सबके द्वारा स्वीकृत होती हैं क्योंकि इसे सही और तर्कसंगत माना जाता हैं। सत्ता केवल कुछ व्यक्तियों के हाथ में ही नहीं होती अपितु समूहों और संस्थाओं में भी केन्द्रित होती हैं। उदाहरण के लिए, राजशाही में सत्ता एक ही व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित होती हैं, अर्थात् राजा के हाथ में होती हैं, जबकि संसदीय लोकतंत्र में सत्ता राज्य की विभिन्न संस्थाओं में निहित होती है। इसी तरह, हम पुलिस अधिकारियों द्वारा दिये गये आदेशों का पालन

करते हैं क्योंकि हम विशिष्ट स्थितियों में अपने ऊपर उनकी सत्ता के प्रयोग को स्वीकार करते हैं।

मैक्स वेबर के अनुसार शक्ति एवं सत्ता की वैधता के तीन आधार हैं परंपरागत सत्ता, करिश्माई सत्ता एवं वैधानिक–तार्किक सत्ता। परंपरागत पितृसत्तात्मक परिवार परंपरागत सत्ता का एक उदाहरण हैं। करिश्माई सत्ता के अंतगर्त लोग किसी व्यक्ति में विश्वास और सम्मान के कारण उसकी बात मानते हैं, उदाहरण के लिए, संपूर्ण भारत ने महात्मा गॉधी का अनुसरण किया क्योंकि वह एक करिश्माई सत्ता थे। आधुनिक समाज में सत्ता की प्रकृति वैधानिक–तार्किक होती हैं जो कि औपचारिक है तथा कानून के द्वारा परिभाषित हैं। इस सत्ता के अंतगर्त, वास्तविक शक्ति व्यक्ति के पास नहीं होती, जो उसका प्रयोग करता हैं, अपितु उस पद में निहित होती है जिस पर उसका कब्जा होता हैं। सत्ता का यह प्रकार अवैयक्तिक और तार्किक प्रकृति का हैं तथा इसका उपयुक्त उदाहरण हैं नौकरशाही।

विभिन्न प्रकार के समाजों में राजनीतिक संस्थाएं

जैसे समाजों का विकास सरल से जटिल औद्योगिक समाजों की ओर हुआ, वैसे ही राजनीतिक संस्थाएं भी अधिक जटिल एवं विषमरूपीय हुई हैं।

राज्यहीन समाज

आधुनिक अर्थ में बिना राज्य वाले समाजो को राज्यहीन समाज की संज्ञा दी जाती हैं। ये सरल या आदिम समाज थे। इन समाजों में कम जनसंख्या और आमने–सामने के सम्बंधों की संभावना के साथ सामाजिक नियंत्रण के लिए किसी औपचारिक स्थापित अभिकरणों,

जैसे राज्य और सरकार, की आवश्यकता नहीं होती। इसके बजाय यहां सत्ता वरिष्ठ जन परिषद तथा समुदाय के मुखिया में निहित होती है और राजनीतिक व्यवस्था नातेदारी एवं वंशावली सम्बंधों के माध्यम से संचालित होती थी।

राज्य एवं आधुनिक समाज

हांलाकि, आधुनिक औद्योगिक समाजों में शक्ति राज्य संस्था में केन्द्रित होती हैं और इसके नागरिकों के बीच फैली होती हैं। मैक्स वेबर ने राज्य को एक मानव समुदाय के रूप में परिभाषित किया जो एक दिये गये क्षेत्र के भीतर शारीरिक बल का वैधानिक प्रयोग करने के एकाधिकार का सफलतापूर्वक दावा करता हैं।

राज्य

राज्य एक राजनीतिक प्रणाली की सबसे आधारभूत संस्था है। राज्य के आवश्यक तत्व हैं:

जनसंख्याः नागरिक जो स्वयं को किसी एकल राज्य का हिस्सा मानते हैं।

प्रांत/क्षेत्रः राज्य अपनी सीमाओं से निर्धारित होते हैं जो कि उसके प्रांतों/क्षेत्रों से बनती हैं।

संप्रभुताः राज्य के क्षेत्र के भीतर सरकार द्वारा लोगों पर प्रयुक्त शक्ति।

सरकारः एक देश या राज्य को नियंत्रित करने के लिए सत्ता से सम्बद्ध लोगो का समूह। सरकार के तीन अंग हैं:

विधायिकाः यह प्रतिनिधियों की निर्वाचित इकाई हैं जिसमें समाज को नियंत्रित करने के लिए कानून बनाने की सत्ता निहित होती हैं।

कार्यपालिकाः यह अंग विधयिका द्वारा पारित कानूनों को लागू करता हैं।

न्यायपालिकाः यह अंग न्याय के एक निष्पक्ष प्रशासन को सुनिश्चित करने के लिए कानूनों की परिभाषा और व्याख्या करता हैं जो नागरिको के कल्याण एवं सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं।

सामाजिक सम्बंधों की व्यवस्थित प्रणाली को बनाये रखने के लिए लोगो को अनुशासित होने की आवश्यकता होती हैं। ऐसे ही मात्र बाह्य संस्थाओं जैसे पुलिस, सेना या न्यायपालिका का होना किसी व्यवस्थित समाज या राज्य में अनुशासन को सुनिश्चित नहीं

कर सकता। सबसे पहले, समाज के प्रतिमानों और मूल्यों की ऐच्छिक स्वीकृति एक आवश्यक तत्व हैं जो नागरिको को बॉधने का एक नैतिक पक्ष हैं।

आधुनिक राज्य परंपरागत राज्यों से बहुत भिन्न होते हैं क्योंकि इन राज्यों को संप्रभुता, नागरिकता एवं राष्ट्रवाद के द्वारा परिभाषित किया जाता है

संप्रभुता से अभिप्राय एक दिये गये प्रांतीय क्षेत्र पर राज्य के अविवादित राजनीतिक शासन से हैं। इसका अभिप्राय एक राज्य की स्वयं को या दूसरे राज्य को नियंत्रित करने की सर्वोच्च शक्ति या सत्ता से हैं। संप्रभु राज्य आसानी से अस्तित्व में नहीं आये, जन आंदोलनों एवं व्यापक संघर्ष के बाद इन्हें स्थापित किया हैं। फ्रांसीसी क्रांति तथा भारतीय स्वाधीनता संघर्ष ऐसे ही आंदोलनों के उदाहरण हैं।

नागरिकता के अधिकारों में सिविल (नागरिक अधिकार), राजनीतिक एवं सामाजिक अधिकारों को सम्मिलित किया जाता हैं। नागरिक अधिकारों में व्यक्ति के रहने की स्वतंत्रता, जहॉ वह चाहता है, या धर्म एवं बोलने की स्वतंत्रता, निजी सम्पत्ति का अधिकार, समानता एवं न्याय का अधिकार इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। राजनीतिक अधिकारों में सार्वजनिक पदों पर चुनाव लड़ने का अधिकार एवं मत देने का अधिकार को सम्मिलित किया जाता हैं। सामाजिक अधिकारों में स्वास्थ्य लाभों, न्यूनतम मजदूरी, शिक्षा का अधिकार इत्यादि को सम्मिलित किया जाता हैं। ये एक व्यक्ति के अधिकार हैं ताकि वह आर्थिक कल्याण एवं सुरक्षा के न्यूनतम मानकों का प्रयोग कर सके।

राष्ट्रवाद को प्रतीकों एवं विश्वासों के एक समुच्चय के रूप में परिभाषित किया जा सकता हैं जो नागरिकों में एकल राजनीतिक समुदाय का हिस्सा होने का भाव निर्मित करता हैं। इस प्रकार, जब लोग स्वयं को भारतीय मानते हैं तब वे गर्व और सम्बंधन की भावना का अनुभव करते हैं।

गतिविधि–8.1

क्या आप जानते हैं कि प्रारम्भिक समय में महिलाओं को मतदान करने का अधिकार नहीं था? खोजिए विभिन्न देशों में कब महिलाओं ने वोट डालना/मतदान करना प्रारम्भ किया।

समाजशास्त्र का सम्बंध सरकार की केवल औपचारिक मशीनरी/प्रशासन के साथ ही नहीं होता अपितु इसकी रूचि शक्ति के व्यापक पक्षों के अध्ययन में होती हैं। यह प्रजाति, भाषा एंव धर्म पर आधारित दलों, वर्गों, जातियों एवं समुदायों के मध्य शक्ति के

वितरण को सीखने में संलग्न रहता हैं। यह **राजनीतिक प्रणाली, पंचायती राज, राजनीतिक दलों और हित समूहों का अध्ययन करने में भी रूचि लेता हैं।**

राजनीतिक प्रणाली

एक राजनीतिक प्रणाली में संस्थाओं, हित समूहो (जैसे राजनीतिक दल, श्रमिक संघ इत्यादि), इन संस्थाओं तथा राजनीतिक प्रतिमानों एवं नियमों के मध्य सम्बन्ध जो उनकी गतिविधियों को (जैसे संविधान, चुनाव के नियम) नियन्त्रित करते हैं, को सम्मिलित किया जाता हैं। परम्परागत मूल्य जैसे रूढिवादिता, संस्तरण, राजशाही एवं तानाशाही इत्यादि को धीरे–धीरे तार्किकता, समानता एवं लोकतंत्र के आधुनिक मूल्यों ने विस्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। राजनीतिक सत्ता चर्च एवं राजशाही के हाथों से निकलकर लोगो द्वारा चुनी गई 'सरकार' के हाथो में चली गई। सरकार का लोकतांत्रिक स्वरूप विश्व में सबसे प्रसिद्ध राजनीतिक प्रणाली माना जाता हैं। लोकतंत्र की दो प्रमुख श्रेणियां हैं– प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधिमूलक।

प्रत्यक्ष लोकतंत्र में सभी नागरिक किसी चयनित अथवा नियुक्त किये गये अधिकारी के बिना सार्वजनिक निर्णय लेने में सहभागिता कर सकते हैं। इस प्रकार का लोकतंत्र केवल तभी सम्भव है जब जनसंख्या कम हो, उदाहरण के लिये, एक व्यवसायिक संगठन में अथवा एक स्थानीय श्रमिक संघ में जहां सभी सदस्य एक छत के नीचे एकत्र हो सकते हैं।

प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र या **अप्रत्यक्ष लोकतंत्र** वह होता हैं जिसमें नागरिक राजनीतिक निर्णय लेने, कानूनों का निर्माण करने तथा जनकल्याण के लिये प्रशासनिक कार्यक्रमों का निर्माण करने के लिये अधिकारियों का चुनाव करते हैं। भारत प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र का एक सफल उदाहरण हैं। भारतीय लोकतंत्र की सफलता एक राजनीतिक प्रक्रिया के द्वारा मूर्त रूप ग्रहण करती हैं जिसका लक्ष्य आधुनिक समाजों का लोकतांत्रीकरण तथा आर्थिक विकास करना हैं।

पंचायती राज

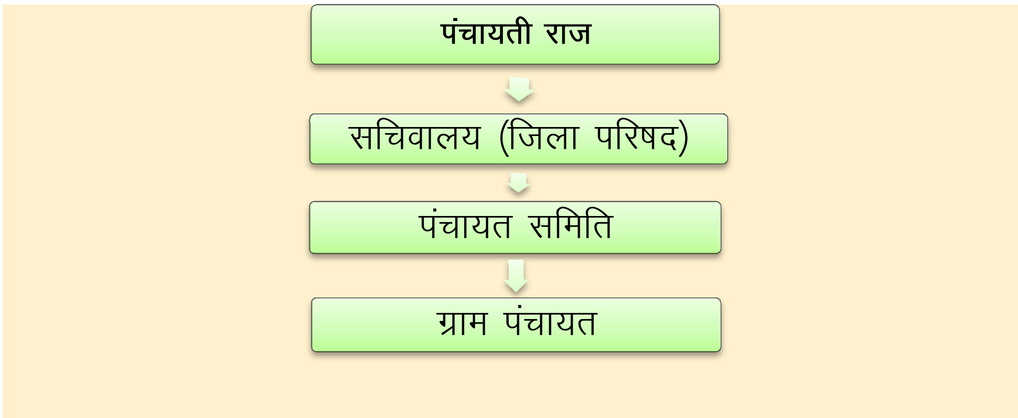

पंचायती राज भारतीय राजनीति की एक महत्वपूर्ण संस्था हैं, जिसका उद्देश्य शक्ति का विकेन्द्रीयकरण इस ढंग से करना हैं जिससे गॉवों के विकासात्मक कार्यक्रमों में एक सामान्य ग्रामीण भी प्रभावी नियन्त्रण प्राप्त कर सके। यह स्थानीय स्व–शासन की एक प्रणाली हैं जिसमें ग्राम पंचायत स्व–सरकार की एक इकाई के रूप में कार्य करती हैं।

यह प्रशासन की त्रि–स्तरिय प्रणाली हैं। इसकी मूलभूत इकाई 'ग्राम पंचायत' अथवा गॉव स्तरीय पंचायत हैं, तत्पश्चात् मध्यवर्ती स्तर पर अथवा खण्ड स्तर पर 'पंचायत समिति' है तथा जिला स्तर पर 'जिला पंचायत' होती हैं। 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम ने पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को व्यापक शक्ति और उत्तरदायित्व प्रदान किये हैं। इसने महिलाओं के लिये राजनीतिक प्रक्रिया में एक बडी संख्या में पद आरक्षित किये हैं तथा उन्हें सहभागिता करने के अवसर प्रदान किये हैं। विकास के संदर्भ में पंचायती राज प्रणाली के निम्नलिखित लाभ या गुण हैं:–

1. पंचायत आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के लिये योजना तैयार करने का एक मंच उपलब्ध कराती हैं।
2. निर्णय लेने की प्रक्रिया में जन सहभागिता तथा उनका अनुपालन करना सम्बन्धित गांवों के लक्षित कार्यक्रमों को चुनने में सहायता करता हैं।
3. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में सुस्थिरता जन सहभागिता का परिणाम हैं।

पंचायती राज प्रणाली की कुछ कमियां भी हैं:–

1. पंचायत के उद्देश्यों के विषय में स्पष्टता की कमी हैं। कुछ लोग मानते हैं कि यह केवल प्रशासनिक संगठन हैं जबकि अन्य लोगो का विचार हैं कि यह जमीनी स्तर पर लोकतंत्र का विस्तार हैं।
2. वित्तीय संसाधनों की कमी पंचायती राज के सफल संचालन में बाधा उत्पन्न करती हैं।
3. पंचायत सभी तीन स्तरों पर प्रशासनिक समस्याओं का अनुभव करती हैं, जैसे स्थानीय प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप होना, तीनों स्तरो के मध्य समन्वय का अभाव होना, प्रशासनिक कर्मचारियों के लिये प्रेरणा तथा आगे बढ़ने के अवसरो का अभाव होना तथा विकास कार्यक्रमों के प्रति सरकारी कर्मचारियों का उपेक्षापूर्ण व्यवहार होना इत्यादि।
4. इन तीनों स्तरो के बीच असहयोगमूलक तथा अर्न्तविरोधी सम्बन्ध होना।
5. सामान्य आदमी तथा पंचायती राज अधिकारियों के मध्य सम्पर्क का अभाव होना।

राजनीतिक दल

राजनीतिक दल लोकतंत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। एक राजनीतिक दल समान हितों और विचारधाराओं वाले व्यक्तियों की एक संगठित इकाई हैं। कुछ राजनीतिक दलों राष्ट्रीय स्तर के होते हैं जैसे कॉग्रेस एवं भारतीय जनता पार्टी जबकि कुछ राजनीतिक दल क्षेत्रीय स्तर के होते हैं जैसे अकाली दल, समाजवादी दल, शिवसेना इत्यादि, जो कि देश के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों के लोगो का प्रतिनिधित्व करते हैं।

राजनीतिक दलों का मुख्य कार्य सरकार के नियंत्रण को प्राप्त करने के लिये लोगो को एकत्र करना तथा संगठित करना, अपने हितों अथवा अपने दल को समर्थन देने वाले समूहो के हित में नीतियों का विकास करना, तथा अपने प्रत्याशी को चुनने के लिये मतदाताओं को संगठित करना और तैयार करना इत्यादि हैं। वे अपने निर्वाचन क्षेत्र के हितों के लिए भी काम करते हैं और नीतियां बनाने में भी सहायता करते हैं। परन्तु दुख की बात हैं कि वे भ्रष्टाचार, शोषण तथा दमन के लिये भी आधार तैयार करते हैं।

गठबन्धन की राजनीति बहु–दलीय स्थिति का एक महत्वपूर्ण पक्ष हैं। गठबन्धन के अन्तर्गत, समान विचारधारा वाले दल राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये एक सामान्य मोर्चे का निर्माण करते हैं। इस प्रकार की गठबन्धन की सरकार अनेक देशों में उपस्थित हैं। राजनीतिक गठबन्धन तब बनाये जाते हैं जब कोई एक राजनीतिक दल सरकार बनाने में समर्थ नहीं होता। इस प्रकार वे राजनीतिक संकटो से बचने तथा समाज में राजनीतिक दलो के मध्य आन्तरिक संघर्षो को कम करने मे सहायता करता

हैं। इस प्रकार, यदि वे गम्भीरता से कार्य करते हैं, तो राजनीतिक दल लोगो तथा अपने प्रतिनिधियों के मध्य एक माध्यम विकसित करने तथा लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने मे सहायता करते हैं।

हित समूह

श्रम विभाजन में वृद्धि के साथ, अनेक व्यावसायिक समूह उभर कर आये। ये सभी समूह विशिष्ट प्रकार के हित रखते हैं जिन्हें वे अपने दिन प्रतिदिन की गतिविधियों में प्रोत्साहित करते हैं। समाज में अपने विशिष्ट हितो का प्रतिनिधित्व करने वाले समूह या संगठनो को हित समूह कहा जाता हैं। इनके अपने विशिष्ट हित होते हैं। ये समूह राजनीतिक निर्णयों तथा लोकतांत्रिक राज्यों की प्रक्रियाओं को प्रभावित करने का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिये, कुछ ऐसी समितियां हैं जो अपने सदस्यों के सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक हितों को संरक्षण देने के लिए कार्य करती हैं। वे राजनीतिक दलो के सदस्यों के माध्यम से सरकार के निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। कुछ हित समूहो का उद्देश्य राष्ट्रीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली पद/स्थिति प्राप्त करना होता हैं। क्योंकि ये समूह अपनी मांगो को पूरा करने के लिये सरकार पर दबाव डालते हैं इसलिये इन्हे 'दबाव समूह' भी कहा जाता हैं। वे आर्थिक समूह हो सकते हैं जैसे श्रमिक संघ, या कारण समूह हो सकते हैं जैसे महिलाओं के अधिकारों या विकलांग लोगो के लिये लडने वाला समूह। वे निजी इकाईयां भी हो सकती हैं जैसे अस्तित्व के लिये संघर्षरत विश्वविद्यालय अथवा सरकारी निकाय जैसे वित्तीय संसाधनों के लिये संघर्षरत विद्यालय इत्यादि।

गतिविधि– 8.2

गठबन्धन सरकार के पक्षों पर चर्चा कीजिए तथा अपने देश में यह किस प्रकार राजनीति को प्रभावित करती है, पर विचार कीजिए।

राष्ट्रीय स्तर पर कुछ प्रमुख गठबन्धनों के उदाहरण दीजिए।

राजनीतिक चिन्तन में विकास के नये पक्ष

समाजशास्त्री एक लम्बे समय से राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन कर रहे हैं। राजनीतिक संस्थाओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने की प्रक्रिया में समाजशास्त्र की एक शाखा के रूप मे राजनीतिक समाजशास्त्र विषय उभर कर आया। यह विषय समाज, राज्य, सरकार तथा सामाजिक संरचना, आर्थिक विकास तथा राजनीतिक विकास के मध्य

पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन पर बल देता हैं। यह सामाजिक संरचना, राजनीतिक प्रणाली, राजनीतिक दलो एवं विचाराधाराओं के साथ ही, धर्म, जाति, वर्ग, जनजाति, भाषा, दबाव समूहों एवं राजनैतिक व्यवहारों के मध्य सम्बन्धों का विश्लेषण करता हैं। यह राजनीतिक परिवर्तनों, राजनीतिक विकास एवं सामाजिक आन्दोलनों के विभिन्न पक्षों के अध्ययन की आवश्यकता पर बल देता हैं।

धर्म की संस्था

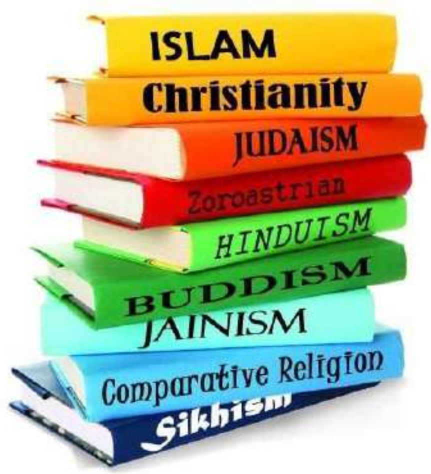

धर्म मानव समाज के सम्पूर्ण इतिहास में विद्यमान रहा हैं। संस्कृति के एक महत्वपूर्ण अंश के रूप में यह मानव के सामाजिक जीवन का अन्तरंग हिस्सा रहा हैं। धर्म समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता हैं। धर्म को नैतिकता का केन्द्र, सार्वजनिक व्यवस्था तथा व्यक्ति की आन्तरिक शान्ति का एक स्त्रोत माना जाता हैं। धर्म में तीन पक्ष होते हैं– संस्कार, विश्वास तथा संगठन। संस्कारों का सम्बन्ध धार्मिक व्यवहार से होता हैं, विश्वास का सम्बन्ध साधनों से साथ ही आस्था के स्वरूपों से होता हैं तथा संगठन का सम्बन्ध उस तंत्र या प्रणाली से होता हैं जिसके द्वारा धर्म सम्बन्धित सदस्यों की भूमिकाओं, प्रस्थितियों एवं अपेक्षाओं का प्रबन्धन करता हैं।

धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त

मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों ने धर्म की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये। ई. बी. टायलर ने 'जीववाद' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसके अनुसार धर्म की उत्पत्ति आत्मा के विचार से हुई हैं। इनका मानना है कि धर्म की उत्पत्ति जीवित और

मृत अनुभवों को महत्व देती हैं। एक व्यक्ति अपने सपनो में क्या देखता है तथा तब क्या होता हैं जब मृत्यु के पश्चात आत्मा शरीर छोडकर जाती हैं, ऐसे सवाल थे जो कि आदिम मनुष्य के लिये पहेली थे इन प्रश्नों ने जीववाद अर्थात आत्मा के अस्तित्व में विश्वास पर बल दिया। आदिम समाजो में यह विश्वास किया जाता था कि मानव क्रियाओं मे अनेक आत्माएं संलग्न होती हैं जो मानव हितो को लाभ अथवा हानि पहुँचाने में समर्थ होती हैं। इसलिये उनसे डरने तथा उनकी पूजा करने की आवश्यकता है। मैक्स मूलर ने 'प्रकृतिवाद' के सिद्धान्त के आधार पर धर्म की उत्पत्ति की व्याख्या की। वे मानते थे कि मानव विकास के प्रथम चरण में आदिम मानव के लिये प्रकृति सबसे आश्चर्यजनक, डरावनी तथा अद्भुद शक्ति के रूप में उपस्थित हुई। वह इसे 'आश्चर्य तथा भय का व्यापक क्षेत्र' कहते थे। धर्म का प्रारम्भ प्राकृतिक वस्तुओं की पूजा से प्रारम्भ हुआ जैसे सूर्य, चन्द्रमा, तारे इत्यादि क्योंकि इनसे लोगो में भय और आश्चर्य की भावनाएं उत्पन्न हुई तथा ये एक व्यक्ति के नियन्त्रण से परे थे। प्रतिष्ठित समाजशास्त्री एमिल दुर्खाइम ने धर्म के उपर्युक्त सिद्धान्तों को अस्वीकार कर दिया तथा धर्म का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त प्रस्तुत किया। दुर्खाइम के अनुसार 'टोटमवाद' धर्म का सबसे आदिम स्वरूप था। 'टोटम' शब्द सबसे पहले उत्तरी अमेरिका की भारतीय जनजातियों में उत्पन्न हुआ तथा पशुओं और पौधो में आध्यात्मिक शक्ति होने के विश्वास के साथ विकसित हुआ। दुर्खाइम ने पवित्र तथा सामान्य वस्तुओं के बीच अन्तर किया। पवित्र वस्तुऐं वे होती हैं जिनके प्रति आदर और सर्वश्रेष्ठता का व्यवहार किया जाता हैं। उन्हें असाधारण माना जाता है तथा प्रतिदिन होने वाली घटनाओं और वस्तुओं से हटकर उनके साथ व्यवहार किया जाता हैं। हालांकि, जीवन में आने वाली अनेक वस्तुऐं प्रतिदिन के जीवन की साधारण वस्तुओं से अलग की जा सकती हैं। दुर्खाइम इन वस्तुओं को 'सामान्य' कहते हैं– हमारे दिन प्रतिदिन के अस्तित्व से जुडी अनेक वस्तुऐं। सामान्य वस्तुऐं पवित्र वस्तुओं से दूरी बनाये रखती हैं। अतः धर्म एक ऐसी सामाजिक संस्था है जो पवित्र वस्तुओं पर आधारित विश्वासों और क्रियाओं को सम्मिलित करती हैं।

दुर्खाइम के अनुसार सभी धार्मिक विचार जैसे टोटम सामाजिक समूह से उत्पन्न हुआ हैं। धर्म पूर्णतः सामाजिक होता हैं– यह सामाजिक संदर्भ में उत्पन्न होता हैं। लोग टोटम का सम्मान करते हैं क्योंकि टोटम सामाजिक मूल्यों एवं सामूहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता हैं। उनके अनुसार धर्म केवल एक सामाजिक निर्माण नहीं है अपितु एक सामाजिक देवता हैं। जब लोग पवित्र वस्तुओं की पूजा करते हैं, वे अपने समाज की शक्ति का सम्मान करते हैं। वे देवी–देवता जिनकी हम एक साथ पूजा करते हैं मात्र समाज की शक्ति का ही प्रदर्शन हैं। इस प्रकार धर्म एक समुदाय के सदस्यों को एक साथ बॉधता/जोडता हैं। दुर्खाइम इस बात पर बल देते हैं कि जीवन में विशिष्ट अवसरों जैसे

जन्म, विवाह तथा मृत्यु के मौको पर सामूहिक उत्सव एवं संस्कार लोगो को नई स्थितियों के साथ समायोजित होने में सहायता करते हैं।

गतिविधि– 8.3

हिन्दुओं में विभिन्न संस्कार होते हैं जो जन्म से लेकर मृत्यु तक उपस्थित होते हैं, उनमे से एक जनेऊ संस्कार हैं। क्या तुम कुछ अन्य पवित्र उत्सवों का नाम बता सकते हो जो ना केवल हिन्दू धर्म से अपितु अन्य धर्मों से भी सम्बन्धित हो?

गतिविधि– 8.4

धर्म से सम्बन्धित संस्कारो में बहुत विविधता होती हैं। संस्कार पूर्ण क्रियाओं में प्रार्थना करना, मंत्र उच्चारण करना तथा निश्चित प्रकार का भोजन ग्रहण करना इत्यादि को सम्मिलित कर सकते हैं। हिन्दु, इस्लाम, सिख एवं ईसाई धर्म से सम्बन्धित विभिन्न संस्कारों की एक सूची बनाइये जो विशिष्ट अवसरो एवं त्यौहारों पर देखे जाते हैं।

धर्म को अनेक तरीकों से परिभाषित किया गया हैं। ई. बी. टायलर इसे 'आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास' कहते हैं। एमिल दुर्खाइम धर्म को पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों तथा क्रियाओं की एकीकृत प्रणाली के रूप में परिभाषित करते हैं अर्थात् ऐसी वस्तुऐं जो लोगो को एक नैतिक समुदाय से जोड़ती हैं, चर्च की संज्ञा दी जाती हैं।

धर्म की विशेषताएं

1 आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास।

2 श्रद्धा, भय, खुशी, आश्चर्य की भावनाओं को उत्पन्न करने वाले प्रतिकों के समुच्चय से सम्बन्धित विश्वास।

3 धार्मिक क्रियाओं में सम्मलित भौतिक वस्तुएं जैसे आभूषण, फूल, पत्तियां, पौधे इत्यादि।

4 धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्ध भौतिक वस्तुऐं एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्न–भिन्न होती हैं।

5 प्रत्येक धर्म अपने विशिष्ट संस्कारों को विकसित करता है जैसे नृत्य, मंत्र, उपवास, विशिष्ट प्रकार का भोजन ग्रहण करना इत्यादि।

6 धार्मिक संस्कार पृथक ढ़ग से किये जाते हैं परन्तु कभी–कभी धार्मिक अवसरो पर सामूहिक रूप से इनका पालन किया जाता हैं।

7 प्रत्येक धर्म में पूजा करने का एक विशिष्ट तरीका तथा एक विशिष्ट पूजा स्थल होता हैं।

8 स्वर्ग एवं नर्क तथा पवित्र एवं सामान्य की अवधारणाऐं धर्म से सम्बन्धित हैं।

प्रमुख धर्म

आधुनिक समय में अनेक धर्म प्रचलित हैं, जैसे हिन्दु, ईसाई, इस्लाम, यहूदी, बौद्ध धर्म, सिख धर्म इत्यादि। भारत एक बहु धार्मिक देश हैं तथा भारत लगभग सभी धार्मिक समूहों का प्रतिनिधित्व करता है। इन समूहो को दो भागो में बांटा जा सकता हैं: भारतीय मूल के धर्म एवं भारत में बाहर से आये धर्म ।

भारतीय मूल के धर्मों में हिन्दु धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा सिख धर्म को सम्मिलित किया जाता हैं। ये भारत में लम्बे समय से प्रचलित रहे हैं। हिन्दू धर्म विश्व के सभी धर्मों में सबसे प्राचीन हैं तथा इसका स्वरूप बहुदेववाद है जहां अनेक देवी–देवताओं की पूजा की जाती हैं। बौद्ध धर्म, जैन धर्म एवं सिख धर्म अन्य धर्म है जो हिन्दू धर्म से ही विकसित हुये हैं। संस्कार एक महत्वपूर्ण धार्मिक क्रिया हैं जो कि पवित्र वस्तुओं से सम्बंधित होती हैं। हिन्दू धर्म में अनेक संस्कार होते हैं जिन्हें जन्म से लेकर मृत्यु तक देखा जाता हैं जैसे गर्भाधान, नाम संस्करण, यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह, दाह संस्कार इत्यादि।

भारत के बाहर से आये धर्म जैसे यहूदी, इसाई एवं इस्लाम जो कि मध्य पूर्व के देशों में उत्पन्न हुऐ थे। ये एक देववाद में विश्वास करते हैं। ये एक देवता और अपने पैगम्बर की पूजा करते हैं। आज विश्व में ईसाई धर्म इस्लाम के बाद दूसरा सबसे बडा धर्म माना जाता हैं। कैथोलिक धर्म में भी अनेक संस्कार जैसे बपतिस्मा अर्थात् दीक्षा, अभिषेक एवं विवाह इत्यादि देखे जा सकते हैं। प्रोटेस्टेंट धर्म में इन संस्कारों के प्रति उदार दृष्टिकोण होता हैं। इस्लाम धर्म भी संस्कारों पर बल देता हैं।

धार्मिक संगठन

आस्था रखने वाले समुदायों के विभिन्न स्वरूप जैसे चर्च, सम्प्रदाय, पंथ तथा इन सभी से सम्बन्धित धार्मिक संगठन उपस्थित हैं ।

चर्च: चर्च से अभिप्राय एक धार्मिक संस्था से है जो इसाई व्यक्तियों का एक धार्मिक स्थल होता हैं। चर्च एक सुस्थापित संगठन है जिसमें पदधारियों के बीच एक संस्तरण देखा जा सकता हैं। इसाईयों में कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेंट दो प्रमुख चर्च होते हैं। यह धर्म अत्यधिक

संगठित हैं। इसके विपरीत, हिन्दू धर्म एक संगठित इकाई नहीं हैं। इसमें महत्वपूर्ण मंदिर है जिसकी देखभाल व्यक्तियों का एक संगठन करता हैं जिन्हें मंदिरों का प्रबन्धन करने की जिम्मेदारी सौंपी जाती हैं। पुजारियों का चुनाव सामान्यतः परम्परागत ढंग से किया जाता हैं।

सम्प्रदायः सम्प्रदाय धार्मिक विश्वास व्यवस्था का एक उप–समूह होता है, जो एक वृहद् धार्मिक समूह की शाखा होता हैं। इसका अभिप्राय किसी भी संगठन से हैं जो किसी बडे संगठन से पृथक होकर भिन्न प्रकार के नियमों और सिद्धान्तों का पालन करता हैं। यह एक धार्मिक संगठन हैं जो सामान्यतः आकार में छोटा होता हैं तथा जो प्राचीन पारम्परिक धार्मिक गतिविधियों के विभिन्न पक्षों को अस्वीकार करके अस्तित्व में आता है। एक सम्प्रदाय कुछ लोगों के द्वारा प्रारम्भ किया जाता हैं तथा बाद में अन्य लोग इसमें सम्मिलित हो जाते हैं। आर्य समाज, नव–बौद्धवाद तथा रामकृष्ण मिशन सम्प्रदाय के उदाहरण हैं।

पंथः एक धार्मिक संगठन हैं जो एक नेता की व्यक्तिगत सोच और विचारधारा के आधार पर निर्मित होता हैं। पंथ आकार में छोटा होता है तथा कम समय के लिये निर्मित होता हैं। जय गुरूदेव, साईबाब, कबीर पंथ इसके उदाहरण हैं। एक पंथ के सदस्य अन्य धर्मों के भी अनुयायी हो सकते हैं।

धर्म की सामाजिक भूमिका

धर्म समाज में अनेक भूमिकाओं का निर्वाह करता हैः

- यह व्यक्ति की आध्यात्मिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करता हैं।
- यह प्रकार्यात्मक हैं क्योंकि समाज को जोड़ता है तथा समाज के लोगो में भाईचारे एवं एकता की भावना को उत्पन्न करता हैं।
- धर्म व्यक्ति के जीवन को नियन्त्रित करता हैं तथा सामाजिक नियन्त्रण का एक महत्वपूर्ण साधन हैं।
- धर्म व्यक्ति को वांछित क्रिया करने तथा अवांछित क्रियाओं को नियंत्रित करने में समर्थ बनाता हैं। हस्तलेखों/शास्त्रों, पुजारियों के उपदेश, प्रार्थना सभाएं तथा परिपाटियों का प्रयोग सामाजिक नियन्त्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- धर्म एक संगठित शक्ति के रूप में काम करता हैं यद्यपि कभी–कभी यह विवाद एवं साम्प्रदायिक तनावों का कारण भी बन जाता हैं।

आधुनिक समाज तार्किकता एवं पंथनिरपेक्षता के मूल्यों को बढावा देता हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी लोगो के आर्थिक जीवन की प्रकृति को नियन्त्रित करती हैं। वर्तमान आधुनिक समाज में धर्म परिवर्तित हुआ हैं जिसके साथ सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष भी परिवर्तित हुये हैं। आज असंख्य समाज धार्मिक बाहुल्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसका अभिप्राय हैं विभिन्न धर्म एक साथ उपस्थित रहते हैं।

आर्थिक संस्थाए

समाज में प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, कपड़े, आवास, स्वास्थ्य सुविधाएं इत्यादि की आवश्यकता होती हैं। परन्तु इन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये धन की आवश्यकता होती हैं। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को धन कमाने के लिये ना केवल काम करना पडता हैं अपितु अपनी जीविका कमाने के लिए समाज के अन्य सदस्यों के साथ सहयोग और उनकी सहायता भी करनी पडती हैं। यह स्थिति जिन गतिविधियों और क्रियाओं को उत्पन्न करती हैं उससे आर्थिक संस्था स्थापित होती हैं। मानव संसाधनों के प्रबन्धन, उत्पादन तथा वितरण से सम्बन्धित सामाजिक संस्थाओं को आर्थिक संस्था की संज्ञा देते हैं। समाजशास्त्रियों के अनुसार, व्यक्तियों की भोजन तथा सम्पत्ति से सम्बन्धित क्रियाओं से आर्थिक संस्था का निर्माण होता हैं।

आर्थिक प्रणाली के प्रकार

शिकार एवं संग्रह पशुपालक कृषक औद्योगिक

समाज में विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियां देखी जा सकती हैंः

शिकार एवं संग्रह से सम्बद्ध अर्थव्यवस्था वाले समाजः

यह अर्थप्रणाली का प्रारम्भिक स्वरूप हैं जो छोटे समाजों में पाया जाता था। यहां संगठित एवं औपचारिक आर्थिक संस्थाएं नहीं होती थी। धनी एवं निर्धन के मध्य विभाजन नहीं था, पुरूष शिकार करते थे तथा महिलाएं अनाज एकत्र करना, खाना बनाना तथा बच्चो की देखभाल करने का कार्य करती थीं।

पशुपालक अर्थव्यवस्था वाले समाज:

इस प्रकार की अर्थ प्रणाली में समाज अपनी जीविका के लिये घरेलू पशु पालन पर निर्भर करते थे। इन्हें पशु पालक कहा जाता था। वे भेड, बकरी, गाय, ऊट अथवा घोडों के झुण्ड रखते थे। इस प्रकार के समाज घने घास के मैदानों या पहाडी क्षेत्रो में रहते थे। लोग मौसम में परिवर्तन के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन करते थे। भोजन की नियमित आपूर्ति तथा उनके द्वारा बडी संख्या में अधिग्रहण की गई भूमि ने सामुदायिक स्तर पर संस्थागत क्रियाओं को उत्पन्न किया।

कृषक अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध समाजः

यह अर्थ प्रणाली पशु पालक अर्थप्रणाली की समकालीन हैं। कुछ सदस्यों ने खाद्य सामग्री एकत्र करने के बजाय फसल बोना प्रारम्भ कर दिया। छोटे स्तर पर खेती करने की इस प्रक्रिया को बागवानी कहा गया। यह क्रिया शिकार और संग्रहण की तुलना में भोजन आपूर्ति का एक महत्वपूर्ण साधन बना। बागवानी से संलग्न लोगो ने गांवों का निर्माण करने के लिए विशिष्ट स्थानों पर रहना शुरू कर दिया। एक बार समूह स्थायी हो गये, समय के साथ–साथ, उन्होंने गावों के बीच कुछ मात्रा में व्यापार सम्बंध बनाना शुरू कर दिये। भूमि पर निजी स्वामित्व सामान्य हो गया, जिससे भूमि स्वामित्व, कुलीन तंत्र तथा कृषक वर्ग उत्पन्न किया। निजी सम्पत्ति तथा सामान्य भूमि के बीच अन्तर स्थापित हो गया। एक बडे पैमाने पर कृषि के विकास ने भोजन की आधिकता, व्यापार एवं वाणिज्य का विस्तार तथा यातायात प्रणाली का विकास किया, जिसके परिणामस्वरूप शहरों तथा नगरीय संस्कृति का निर्माण हुआ। इस प्रकार आधुनिक औद्योगिक समाज विकसित कृषक समाजो की देन हैं।

औद्योगिक अर्थव्यस्था वाले समाज

औद्योगिक समाज एक सामाजिक प्रणाली हैं जहां वस्तुओं का उत्पादन मशीनों की सहायता से प्रमुखता से किया जाता है। इसका अभिप्राय उत्पादन के स्थान में परिवर्तन होने से है जो गांवो से नगर की ओर तथा घर से कारखानों की ओर हुआ। औद्योगिकीकरण 18 वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम था। यह प्रौद्योगिकीय क्रान्ति का एक स्वरूप था जिसने उन साधनों को प्रभावित किया जिसके द्वारा लोग अपनी जीविका के लिये वस्तुओं का उत्पादन करते थे। प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की गति इतनी तीव्र थी कि इसने उद्योग, कृषि, यातायात, संचार तथा विभिन्न अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किये। इस प्रकार अधिक से अधिक लोग शहरो और कस्बों में स्थानान्तरित हो गये क्योंकि वहां कृषि की तुलना में दुकानों और कारखानों में रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध थे। धीरे–धीरे, लोग नियमों से नियंत्रित होने लगे जिसने उनके जीवन को औपचारिक बना दिया।

पूंजीवादी समाज

यह अर्थव्यवस्था पूंजी की अवधारणा पर केन्द्रित है तथा 16 वीं और 17 वीं शताब्दी में यूरोप में उभर कर आई। इसमें उत्पादन के साधनों पर जिन लोगो का स्वामित्व एवं नियन्त्रण होता है वे वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करने के लिये श्रमिकों को मजदूरी/वेतन के बदले नियुक्त करते हैं। पूँजीवाद के मुख्य तत्व श्रमिको के मध्य सम्बन्ध, उत्पादन के साधन, कारखाने, मशीन–उपकरण तथा वे लोग होते हैं जिनका उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व होता हैं। पूँजीवादी वर्ग के सदस्य उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व रखते हैं परन्तु वस्तुओं/सम्पत्ति का उत्पादन नहीं करते। वह मजदूरी के बदले श्रमिक वर्ग का श्रम खरीदते हैं। श्रमिक वर्ग के सदस्यों का उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व या नियन्त्रण नहीं होता परन्तु वे उसका प्रयोग वस्तुओं/धन उत्पादन के लिये करते हैं।

कार्ल मार्क्स के लेखन से हमे पता लगता हैं कि पूंजीवाद में समाज में दो प्रमुख वर्ग होते हैं– पूँजीपति (बुर्जुआ) तथा श्रमिक (सर्वहारा)। मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार बुर्जुआ वर्ग सर्वहारा वर्ग का शोषण करता है, यह सर्वहारा के हित में होगा कि वह क्रांति के माध्यम से बुर्जुआ वर्ग को उखाड फेकें और एक वर्गहीन समाज की स्थापना करे। आधुनिक औद्योगिक समाजो में, पूंजीवाद एक विकसित स्वरूप में उभर कर आया जिसे 'एकाधिकारवादी पूंजीवाद' की संज्ञा दी गई। इस स्वरूप में, बडे निगम एवं उद्योग आर्थिक शक्ति का वृहद् वैश्विक केन्द्र बनने के लिये एक–दूसरे के साथ मिल गये तथा उत्पादन और संसाधनों पर नियन्त्रण करने के लिय शक्ति का अधिक प्रयोग किया

जिसके कारण वे राज्य की अर्थव्यवस्था को तथा सामान्य तौर पर लोगो के जीवन को भी नियन्त्रित करते हैं।

समाजवादी समाज

इस प्रणाली की कल्पना 19 वीं शताब्दी में मार्क्स ने प्रस्तुत की जिसमें उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व और नियन्त्रण एक लोकतांत्रिक राज्य या श्रमिको के एक सामूहिक संगठन का होता हैं। मार्क्स के अनुसार समाजवाद श्रमिकों की क्रांति के द्वारा पूंजीवाद को विस्थापित कर देगा। समाजवाद का मुख्य लक्ष्य वर्ग प्रणाली को समाप्त करना हैं ताकि श्रमिकों का शोषण एवं दमन तथा उनमें उत्पन्न अलगाव की भावना को समाप्त किया जा सके। समाजवाद का लक्ष्य सामूहिक कल्याण करना हैं।

श्रम विभाजन की प्रक्रिया

आधुनिक समाजों में कार्य को विभिन्न व्यवसायों में बडी संख्या में विभाजित किया गया हैं। जिसमें लोग विशेषज्ञता के आधार पर जटिल श्रम विभाजन को उत्पन्न करते हैं। इसलिये श्रमविभाजन आधुनिक समाजो की अर्थ प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता हैं जिसके द्वारा सामाजिक जीवन स्वरूप ग्रहण करता है जिसमें व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से संलग्न होता हैं। परम्परागत समाजों में, अनेक प्रकार के कार्य किये जाते थे परन्तु श्रम विभाजन सापेक्षिक रूप से सरल था। परन्तु आधुनिक औद्योगिक समाजो में, सरल कौशलो को वृहद् पैमाने पर उत्पादन प्रक्रियाओं ने विस्थापित कर दिया। विभिन्न लोग विभिन्न काम करने लगे, जिससे यह प्रक्रिया जटिल हो गई। एमिल दुर्खाइम के अनुसार, श्रम विभाजन सामाजिक सम्बद्वता को प्रभावित करता हैं। पूर्व औद्योगिक समाजों में सरल श्रम विभाजन लोगों की एक दूसरे के साथ समरूपता पर आधारित था। सामाजिक एकता के इस स्वरूप को 'यात्रिक एकता' की संज्ञा दी गई। दूसरी तरफ, औद्योगिक समाजो में एकता समरूपता पर आधारित नहीं हैं अपितु भिन्नताओं पर आधारित हैं क्योंकि इन समाजों में श्रम विभाजन जटिल हैं तथा असंख्य विशिष्ट कार्यो को उत्पन्न करता हैं जहां सभी एक दूसरे से भिन्न हैं परन्तु अन्तःनिर्भर हैं। इस प्रकार की सामाजिक एकता को 'साव्यवी एकता' कहा जाता हैं। दुर्खाइम के अनुसार यांत्रिक श्रम विभाजन से साव्यवी श्रम विभाजन की तरफ हुआ परिवर्तन वैसा ही हैं जैसे जीव का विकास सरल से जटिल की तरफ हुआ।

श्रम विभाजन का संस्थागत पक्ष जाति प्रणाली में स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैं। पांरम्परिक तौर पर, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आर्थिक कार्य जातियों के बीच सेवाओं के

प्रत्यक्ष विनिमय द्वारा किये जाते थे। इस प्रणाली को जजमानी व्यवस्था कहा जाता था जिसमें जजमान एवं कामिन (सेवा प्रदाता) के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सम्बन्ध होते थे। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें व्यक्ति अपने विशेष व्यवसायो के अनुसार जातियों को सेवाये देते थे। सेवा देने वाली जातियों तथा सेवाये लेने वाली जातियों के बीच यह एक दीर्घ कालिक सम्बन्ध थे। यह एक ऐसी प्रणाली है जहां उच्च जाति के भू–स्वामी परिवारो को विभिन्न निम्न जातियां सेवाये प्रदान करती थी। वास्तव में सेवाये देने वाली निम्न जातियों को उनके व्यवसायों के आधार पर नाम दिया जाता था उदाहरण के लिये लकड़ी का सामान बनाने वाले को बढई/खाती के नाम से जानते थे, बाल काटने वाले को नाई/हज्जाम के नाम से जानते थे, कपडे धोने वाले को धोबी के नाम से जानते थे। हांलाकि औद्योगिकीकरण में हुई तीव्र वृद्धि तथा व्यावसायिक विविधता ने जाति प्रणाली को विघटित कर दिया तथा आज जाति और व्यवसाय एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं हैं। कार्य की दृष्टि से यदि देखा जाये तो श्रम विभाजन और अधिक जटिल हो गया तथा जाति का महत्व कम हुआ हैं।

आर्थिक संस्था में परिवर्तन

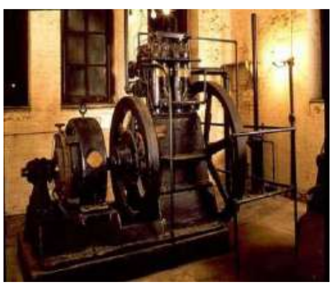

मशीनीकरण

बहुराष्ट्रीय कम्पनीयां

कॉल केन्द्र

20 वीं शताब्दी में आर्थिक क्षेत्र में कुछ प्रमुख विकास कार्य हुए। समूह–उत्पादन के व्यापक प्रयोग को क्रमिक संयोजन तकनीक (असेम्बली लाइन टेक्नीकस) कहा जाता है क्योंकि यह उत्पादन की एकमात्र स्वयं समर्थ/व्यवहार्य प्रणाली है जिसके अन्तर्गत मनुष्य और मशीन कार्य प्रणाली के सूक्ष्म क्रम को पूरा करने के लिए पंक्तिबद्ध होते हैं अथवा एकजुट होते हैं। 1980 के उत्तरार्द्ध से शेष विश्व के साथ भारत ने भी अपने आर्थिक इतिहास के एक नये युग में प्रवेश किया हैं। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की नीतियों ने केवल आर्थिक पक्ष के संदर्भ में ही समाजों को एक–दूसरे से वैश्विक स्तर पर अन्तःसम्बंधित नहीं किया हैं अपितु विकास को भी प्रेरित किया हैं। सॉफ्टवेयर सेवा उद्योग तथा बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग (बाहरी स्त्रोत से सेवाएं प्राप्त करने की

व्यापारिक प्रक्रिया) उद्योग (जैसे कॉल सेंटर) प्रमुख उदाहरण हैं, जिसने भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था से जोड़ा हैं। उत्पादन का मशीनीकरण सभी प्रकार के उद्योगों में फैला हैं।

शिक्षा संस्था

एक व्यक्ति जैविक इकाई के रूप में जन्म लेता हैं परन्तु शीघ्र ही सामाजिक इकाई बन जाता हैं। मनुष्य का जैवकीय से सामाजिक इकाई में रूपांतरण समाजीकरण व शिक्षा के माध्यम से होता हैं। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया हैं जो एक बच्चे के व्यक्तित्व एवं आन्तरिक क्षमताओं का विकास करती हैं। शिक्षा मनुष्य को आवश्यक ज्ञान एवं कौशल उपलब्ध करवाकर समाज में वयस्क भूमिकाओं का पालन करने के लिए समाजीकृत करती है अथवा तैयार करती हैं तथा व्यक्ति को समाज का एक उत्तरदायी नागरिक एवं सदस्य बनाती हैं। भारतीय समाज में प्राचीन समय से ही हमारे शिक्षण संस्थान गुरू–शिष्य परम्परा पर आधारित थे। नालंदा व तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र थे। पंरपरागत भारतीय समाज में शिक्षा तथा आध्यात्मिक पक्षों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसके अतिरिक्त शिक्षा का उद्देश्य अंतिम एवं पूर्ण वास्तविकता को प्राप्त करने में मनुष्य की मदद करना था।

समाजशास्त्रियों की शिक्षा के अध्ययन में, विशेष रूप से, समाज के संदर्भ में शिक्षा के अध्ययन करने में रूचि रही हैं। फ्रांसीसी समाजशास्त्री एमिल दुर्खाइम ने शिक्षा को एक ऐसे प्रभाव के रूप में परिभाषित किया हैं जिसे वयस्क पीढ़ी उस पीढ़ी पर प्रयुक्त करती है जिसने सामाजिक जीवन में प्रवेश नहीं किया। उनका मानना था कि जब तक समाज के सदस्यों के बीच समरूपता बनी रहती हैं तब तक ही उसका अस्तित्व बना रह सकता हैं तथा जिसे शिक्षा के द्वारा प्रोत्साहित किया जाता हैं। शिक्षा के माध्यम से ही एक बच्चा समाज के मूलभूत नियमों, अधिनियमोां, प्रतिमानों एवं मूल्यों को सीखता हैं। शिक्षा की प्रकार्यात्मक भूमिका पर किंग्सले डेविस तथा विल्बर्ट मूर ने भी प्रकाश डाला हैं। उनके अनुसार सामाजिक स्तरीकरण उपयुक्त व्यक्तियों को समाज में पद आबंटित करने का एक तंत्र अथवा प्रणाली हैं। शिक्षा प्रणाली इस उद्देश्य की पूर्ति करती हैं तथा यह भी

सुनिश्चित करती है कि सक्षम लोग समाज में महत्वपूर्ण पदो पर कब्जा करते हैं/नियुक्त होते हैं।

शिक्षा के प्रकार्य

शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य समाज को व्यवस्थित करना तथा व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विकास करना हैं। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा अनेक प्रकार्य करती है। ये हैं:

अ. शिक्षा व्यक्तियों को समाज के साथ एकीकृत करती हैं।

ब. यह समाज को बनाये रखने में मदद करती हैं।

स. शिक्षा संस्कृति को विकसित करती हैं।

द. यह व्यक्तियों की क्षमता में वृद्धि करती हैं।

औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा

व्यापक रूप से शिक्षा की दो प्रणलिया हैं– औपचारिक एवं अनौपचारिक।

औपचारिक शिक्षा

जहॉ शिक्षा एक सुपरिभाषित संस्थागत ढांचे/संरचना में दी जाती हैं उसे औपचारिक शिक्षा कहा जाता हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली औपचारिक शिक्षा का ही एक स्वरूप हैं। इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1. इसका अभिप्राय एक औपचारिक संस्थागत प्रणाली के साथ स्कूली शिक्षा से है। औपचारिक शिक्षा प्रणाली के 3 महत्वपूर्ण तत्व/कारक हैं–
   (अ) एक संगठित संरचना
   (ब) शिक्षा की एक सुनिश्चित तथा उचित ढंग से परिभाषित अंतर्वस्तु
   (स) निश्चित नियम एवं अधिनियम

2. औपचारिक शिक्षा के 3 स्तर हैं– प्राथमिक शिक्षा, कॉलेज/महाविद्यालयी शिक्षा तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा और प्रत्येक स्तर पर एक विशिष्ट प्रकार की

संगठनात्मक संरचना होती हैं जो शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा प्रशासनिक कर्मचारियों से निर्मित होती हैं।

3. आधुनिक औपचारिक शिक्षा जन (सामूहिक) शिक्षा हैं। कोई भी जाति, पंथ या धर्म इत्यादि के आधार पर विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में प्रवेश देने से इन्कार नहीं कर सकता। प्राचीन भारतीय समाज में केवल उच्च जाति के लोगो को ही शिक्षा का अधिकार/ विशेषाधिकार प्राप्त था। निम्न जाति के लोग शिक्षा से वंचित थे। परन्तु स्वतन्त्र भारत का संविधान सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य के अन्तर्गत समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए शिक्षा की गारंटी देता हैं।
4. दूरस्थ शिक्षा औपचारिक संगठन का एक महत्वपूर्ण स्वरूप हैं जो उन लोगो को उच्च शिक्षा उपलब्ध करवाता है जो स्वयं को नियमित विद्यालयों, महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों में पूर्णकालिक छात्रों के रूप में पंजीकृत नहीं करा सकते हैं। यह डाक एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से शिक्षण परिसर के बाहर आयोजित किया जाने वाला एक शिक्षण कार्यक्रम हैं।

गतिविधि– 8.5

1 क्या आप जानते हैं कि सार्वजनिक एवं सहायता प्राप्त स्कूलो में आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग तथा वंचित समूहों के छात्रों के लिए 25 प्रतिशत सीटे आरक्षित होती हैं ?

2 समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गो को पहचानने की क्या कसौटी हैं ?

औपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा से अभिप्राय उन गतिविधियों से हैं जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने परिवार तथा उसके बाहर के दिन प्रतिदिन के जीवन के संदर्भ में ज्ञान प्राप्त करता हैं। यह मुख्यतः ऐसे समाजों में प्रभावी हैं जहां बच्चों को शिक्षा देने के लिए विद्यालय नहीं हैं या अपर्याप्त विद्यालय होते हैं। परिवार एवं नातेदारी समूह अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करते हैं और यह सामान्यतः उनकी सामाजिक व आर्थिक आवश्यकताओं से सम्बद्ध दिन–प्रतिदिन के व्यवहार से जुड़ी गतिविधियों से सम्बन्धित होती हैं।

भारत में शिक्षा की नीतियॉ

शिक्षा की नीतियों के संदर्भ में कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की चर्चा की जा सकती हैं:

1. हमारे संविधान के अनुच्छेद 45 के अंतर्गत 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया हैं।
2. 1960 में गठित कोठारी आयोग सार्वभौमिक नामांकन और उसे बनाये रखने पर बल देता हैं।
3. एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति को 1986 में अपनाया गया था जिसमें व्यावसायिक शिक्षा और वंचित समूहों के लिए शिक्षा के समान अवसरों पर बल दिया गया था।
4. सर्व शिक्षा अभियान 1986 तथा 1992 ने 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए उपयोगी और प्रासंगिक शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया।
5. बच्चो हेतु निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम (RTE, 2010) कहता है कि 6 से 14 वर्ष की आयु समूह के हर बच्चे को आयु के अनुरूप उसके आस–पडोस के निकटतम स्थान पर कक्षाओं में 8 कलास तक की प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जायेगी।

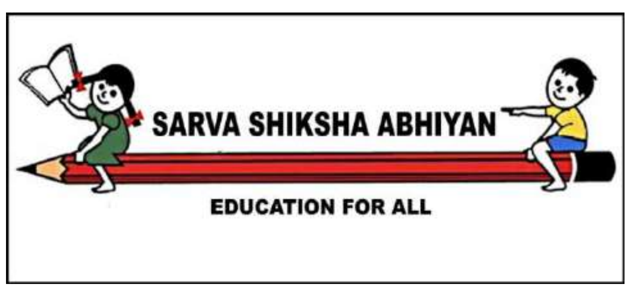

शिक्षा प्रणाली की एक प्रवृति हैं शिक्षा का निजीकरण। परन्तु भारत में जहां निर्धन वर्ग की शिक्षा तक पहुंच नहीं हैं, शिक्षा का निजीकरण पुनः सामान्य जन के हितों को नुकसान पहुंचा सकता हैं। निजीकरण प्रणाली शिक्षा का प्रशासन एवं प्रबन्ध निजी इकाईयों के हाथ में होगा तथा इस बात की पूरी संभावना है कि शिक्षा अभिजात वर्ग के लिए ही सुरक्षित हो जायेगी। अतः वास्तव में, निजीकरण से असमानता में को और भी वृद्धि होगी। अतः देश में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली स्थापित करने की आवश्यकता है जो साधारण जन/ सामान्य जन को आसानी से शिक्षा उपलब्ध करा सके जो केवल जन शिक्षा आधारित नीतियों के माध्यम से ही संभव हो सकता है। भारत में शिक्षा आधुनिकीकरण, सामाजिक परिवर्तन तथा राष्ट्रीय विकास का एक स्त्रोत हैं। शिक्षा न केवल ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि करती है अपितु एक नगरीय, औद्योगिक, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक उपभोक्ता समाज के मूल्यों को भी बढावा देने की ओर उन्मुख हैं।

निष्कर्ष

- शक्ति व्यक्तियों अथवा समूहों की क्षमता हैं जो विरोध के बावजूद दूसरों को नियंत्रित करती हैं।
- सत्ता शक्ति का वैद्यानिक प्रयोग हैं।
- वैधता एक प्रक्रिया हैं जिसके द्वारा शक्ति न केवल संस्थागत रूप ग्रहण करती हैं अपितु नैतिक आधार भी प्राप्त करती हैं। लोग शक्ति के वितरण को उचित एवं वैध मानते हैं।
- राष्ट्र–राज्य के प्रमुख तत्वों में प्रांत/ क्षेत्र, संप्रभुता, सरकार तथा राष्ट्रवाद सम्मिलित हैं।
- हित समूह एक संगठन है जिसका उद्देश्य समाज में राजनीतिक शक्ति के वितरण तथा प्रयोग को प्रभावित करना होता हैं।
- धर्म लोगों का एक नैतिक समुदाय हैं जो उन्हें सामान्य विश्वासों व व्यवहारों के माध्यम से एकीकृत रखता हैं।
- दुर्खाइम मानते हैं कि धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित होता हैं।
- ईसाई, इस्लाम, हिन्दु, बौद्ध, जैन तथा कन्फ्यूशियस विश्व के प्रमुख धर्म हैं।
- प्रकार्यात्मक रूप से धर्म व्यक्ति की आध्यात्मिक, सामाजिक तथा मनौवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करता हैं।
- आर्थिक क्रियाओं तथा आवश्यकताओं से सम्बद्ध नियमों की प्रणाली को आर्थिक संस्था कहा जाता हैं।
- समाज विभिन्न आर्थिक स्वरूपों से होकर गुजरे हैं।

- आधुनिक समाज की आर्थिक प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता है, श्रम विभाजन के अत्यधिक जटिल व विविधतापूर्ण स्वरूप का विकास।
- ऐतिहासिक रूप से, शिक्षा सभी कालों में उपस्थित रही हैं तथा यह नई पीढ़ी को ज्ञान, कौशल, परम्पराओं व संस्कृति को हस्तांतरित करने में सहायता करती हैं।
- शिक्षा प्रणाली औपचारिक व अनौपचारिक दो प्रकार की होती हैं।
- भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को विकसित करने में शिक्षा नीतियों ने विशेष योगदान दिया हैं।

शब्दावली

जीववाद / आत्मावाद — पशुओं और पेड–पौधों में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करके स्वप्न और मृत्यु जैसी घटनाओं की व्याख्या करना।

सत्ता — एक समुदाय या समाज के भीतर राजनीतिक नियमों द्वारा स्थापित शक्ति या प्रभाव।

वस्तु–विनिमय — कृषि क्षेत्र में उपयोग की वस्तुओं का परस्पर विनिमय करना।

पंथ — एक छोटा धार्मिक समूह जो भिन्न विश्वास व्यवस्था एवं क्रिया प्रणाली से सम्बद्ध हो।

श्रम विभाजन — अनेक हिस्सों में विभाजित कार्य प्रक्रिया, जिसके प्रत्येक हिस्से को अपने कौशल एवं क्षमता के आधार पर एक पृथक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह नियंत्रित करता है।

अर्थ व्यवस्था — उत्पादन एवं वितरण की प्रणाली।

शिक्षा — एक बच्चे को उसके समग्र विकास के लिए बौद्धिक, नैतिक, शारीरिक तथा सामाजिक निर्देश देने की औपचारिक प्रक्रिया।

वैश्वीकरण — विश्व दृष्टि, उत्पादों, विचारों तथा संस्कृति के अन्य पक्षों के विनिमय से उत्पन्न अंर्तराष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया।

गुरूकल — समग्र शिक्षा हेतु परम्परागत हिन्दु केन्द्र।

समरूपता	दो या अधिक भिन्न समूहों या कुछ वस्तुओं के मध्य समानताएं।
जजमानी व्यवस्था	जजमान (संरक्षक) एवं कमीन (सेवादार) के मध्य वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय की परम्परागत प्रणाली।
उदारीकरण	कठोर/वाणिज्यिक नियमों में उदारता होना।
राष्ट्र–राज्य	एक विशिष्ट प्रकार का राज्य, जो आधुनिक विश्व की विशेषता है जिसमें एक निश्चित प्रांतीय क्षेत्र के भीतर सरकार को संप्रभुता की शक्ति प्राप्त हो तथा जनसंख्या समूह नागरिकों के रूप में स्वयं को एक एकल राष्ट्र का हिस्सा मानते हो।
दबाव समूह	एक विशिष्ट समूह जो लोकतांत्रिक राज्यों में राजनीतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करने की क्रिया या प्रयास करता हैं।
संस्कार	प्रतीकों तथा प्रतिमानों के समुच्चय का पालन करने के द्वारा अभिव्यक्त औपचारिक क्रियाएं।
पवित्र	धार्मिक विश्वास जो प्रतिदिन की घटनाओं एवं वस्तुओं को असाधारण एवं बाह्य मानते हैं।
संम्प्रदाय	कुछ विशिष्ट संस्कारो के आधार पर निर्मित एक धार्मिक समूह।
संप्रभुता	निश्चित प्रांतीय सीमाओं के भीतर एक राज्य या इसमें रहने वाले लोगों द्वारा प्रयुक्त सरकार की सर्वोच्च शक्ति।
राज्य समाज	समाज जो सरकार के औपचारिक उपकरण से युक्त हैं।
राज्यहीन समाज	एक समाज जो सरकार की औपचारिक संस्था से वंचित हैं।
प्रतीक	हाव–भाव, वास्तुशिल्प, चिन्ह तथा अवधारणा इत्यादि का समुच्चय जो भिन्न अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं।
टोटम	एक पौधा और पशु या वस्तु जो एक पवित्र समूह का प्रतीक होता हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 1– 15 शब्दों में दीजिए:

1. शक्ति से आपका क्या अभिप्राय है ?
2. मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत सत्ता के तीन प्रकार बताइये।
3. अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं ?
4. राज्य के कोई दो तत्व बताइये ?
5. जीववाद का सिद्धान्त किसने प्रस्तुत किया ?
6. किसने पवित्र एवं सामान्य वस्तुओं के बीच अन्तर किया ?
7. प्रकृतिवाद के विचार की चर्चा किसने की ?
8. किसने धर्म को 'आध्यात्मिक सत्ता में एक विश्वास' माना हैं ?
9. दो ऐसे धर्मों के नाम बताइये जो भारत में बाहर से आये हैं।
10. संप्रदाय से आप क्या समझते हैं ?
11. पंथ का अर्थ स्पस्ट कीजिए।
12. कार्ल मार्क्स द्वारा प्रस्तुत पूंजीवादी समाज के दो प्रमुख वर्गो के नाम बताइये।
13. औपचारिक शिक्षा किसे कहते हैं ?
14. अनौपचारिक शिक्षा को परिभाषित कीजिए।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 30–35 शब्दों में दीजिए:

1. राज्यहीन समाज किसे कहते हैं ?
2. करिश्माई सत्ता पर विचार व्यक्त कीजिए।
3. वैधानिक–तार्किक सत्ता किसे कहते हैं?
4. पंचायती राज प्रणाली के दो गुण लिखिए।
5. जीववाद और प्रकृतिवाद से आपका क्या अभिप्राय है ?
6. हित समूह किसे कहते हैं ?
7. पवित्र एवं सामान्य पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।

8. टोटमवाद पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. पशुपालक अर्थव्यवस्था किसे कहते हैं ?
10. कृषि अर्थव्यवस्था किस प्रकार औद्योगिक अर्थव्यवस्था से भिन्न है ?
11. जजमानी प्रणाली किसे कहते हैं ?
12. पूँजीवादी समाज पर विचार व्यक्त कीजिए।
13. समाजवादी समाज किसे कहते हैं ?
14. शिक्षा के निजीकरण का उदाहरण दीजिए।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 75–85 शब्दों में दीजिए:

1. धर्म पर एमिल दुर्खाइम के विचारों की चर्चा कीजिए।
2. धर्म किस प्रकार समाज मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं ?
3. शिक्षा संस्था से क्या अभिप्राय हैं ? सरकार द्वारा अपनायी गयी शिक्षा नीतियों के विषय में लिखिए।
4. शिक्षा के प्रकार्यो को संक्षेप में लिखिए।
5. मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत सत्ता के प्रकारो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
6. राज्य समाज एवं राज्यहीन समाज में अन्तर कीजिए।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 250–300 शब्दों में लिखिए:

1. राजनीतिक संस्था से आप क्या समझते हैं, विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. पंचायती राज पर टिप्पणी कीजिए।
3. हित समूह किस प्रकार दबाव समूहों के रूप में काम करते हैं ?
4. धर्म को परिभाषित कीजिए। इसकी विशेषताओं की विवेचना कीजिए।
5. धर्म किस प्रकार समाज के लिए उपयोगी व हानिकारक है ?
6. आदिम, पशुपालक, कृषि तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं की विशेषताओं की संक्षेप में चर्चा कीजिए।
7. श्रम विभाजन पर एक टिप्पणी लिखिए।

8. आर्थिक संस्था को परिभाषित कीजिए। अर्थप्रणाली में होने वाले परिवर्तनों की चर्चा कीजिए।
9. शिक्षा को परिभाषित कीजिए। औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा के मध्य उदाहरणों सहित अन्तर कीजिए।
10. समाज में शिक्षा की भूमिका पर प्रकार्यवादी समाजशास्त्रियों के विचारों को प्रस्तुत कीजिए।

इकाई : 5

सामाजिक संरचना, सामाजिक स्तरीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन

अध्याय 9

सामाजिक सरंचना

मुख्य बिन्दु:

9.1 अर्थ
9.2 विशेषताएं
9.3 अवयव
 9.3.1 प्रस्थिति
 9.3.2 भूमिका

परिचय

समाजशास्त्र में सामाजिक सरंचना एक मूल अवधारणा हैं। हर्बट स्पेन्सर पहले विचारक हैं जिन्होनें सामाजिक सरंचना और उसके विश्लेषण पर ध्यान केन्द्रित किया था। इसके पश्चात यह अवधारणा सामाजिक अध्ययनों में काफी प्रसिद्व हुई और काफी समाजशात्रियों तथा सामाजिक वैज्ञानिकों ने इसके बारे में लिखा। सरंचना का शाब्दिक अर्थ, ईकाइयों के क्रमिक रूप को कहते हैं जैसे साइकिल के विभिन्न भागों के जोड़ को साइकिल नहीं कहा जा सकता जब तक उन्हें क्रमिक रूप से एक दूसरे से जोड़ा नहीं गया हो। ठीक इसी प्रकार से, समाज की विभिन्न ईकाइयों की क्रमिक व्यवस्था को सामाजिक सरंचना कहते हैं। समाजशास्त्रीयो के अनुसार सामाजिक सरंचना व्यवहारों का प्रारूप एंव अंतक्रियाएं है जोकि नियंत्रित, सर्वव्यापक और दीर्घ समय तक चलने वाली होती हैं। वे स्वंय अदृश्य होती हैं, लेकिन सामाजिक जीवन को भविष्यवाणी योग्य, संगठित और प्रसिद्ध बनाती हैं।

सामाजिक संरचना का अर्थ

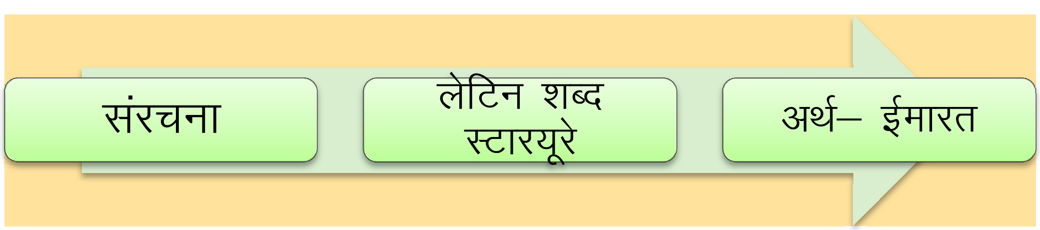

सरंचना शब्द लेटिन भाषा के शब्द "स्टारयूरे" से बना हैं। जिसका अर्थ– "ईमारत" हैं। सरंचना का अग्रेंजी अर्थ ईमारत की क्रमिक रूप में व्यवस्था या सरंचना से हैं। इससे अभिप्राय विभिन्न भागों के परस्पर व्यवस्थित रूप से हैं जिसका अर्थ ब्राहय व्यवस्था, बनावट एंव संगठन से हैं। उदाहरण के लिए, संगीत बनावट की संरचना होती हैं, जोकि संगीतीय टीका–टिप्पणी, ध्वनियों, छंदों आदि से मिलकर बनी होती हैं। सामान्यतः एक ईमारत की भी संरचना होती हैं जो विभिन्न भागों से मिलकर बनती हैं जैसेः पत्थर, रेत, ईंट एवं लोहा आदि। अतः ईमारत की संरचना तब बनती है जब विभिन्न भाग व्यवस्थित तौर पर जुड़े होते हैं। सामान्यतः समाज की भी संरचना होती हैं। जोकि व्यक्तियों के द्वारा सामाजिक संबंधों के अंतक्रियात्मक घनिष्टता से बनते हैं।

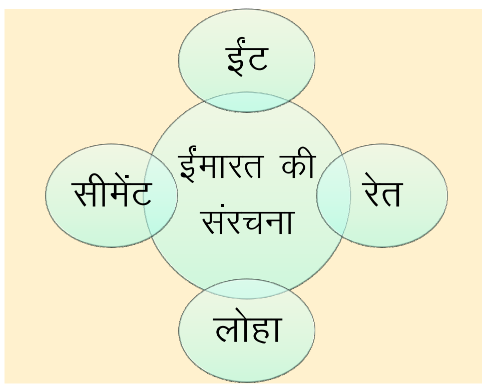

ईमारत की संरचना

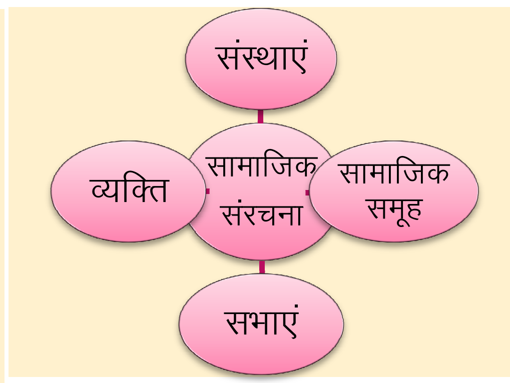

समाज की संरचना

उपर्युक्त चित्र यह दर्शाता हैं कि कैसे मानवीय समाज की संरचना ईमारत की संरचना के समान होती हैं। जिसकी तीन विशेषताएं हैंः–

1. इसमें ईमारतीय साम्रगी जैसे– ईंट, गारा, धरन (लकड़ी का मोटा लद्दा) एवं खंभा आदि प्रयोग होती हैं।
2. ये सभी क्रमिक तौर पर व्यवस्थित होती हैं।
3. ये सभी ईमारत को एक इकाई का आकार प्रदान देने के लिए इकाई में प्रयोग की जाती हैं।
4. इसी प्रकार, समाज की संरचना भी पुरूषो एंव स्त्रियों, युवकों एंव बच्चों, व्यवसायिक एवं धार्मिक समुहों आदि से मिलकर बनती हैं।
5. विभिन्न भागों के मध्य अंर्तसंबंध (जैसे पति एवं पत्नी के मध्य संबंध, बच्चों तथा माता–पिता के मध्य संबंध, और विभिन्न समुहों के मध्य संबंध) तथा समाज के विभिन्न भाग जो एक इकाई के रूप में काम करने के लिए इकट्ठें हुए हो आदि

से बनती हैं। इस प्रकार, सामाजिक संरचना यह दर्शाती हैं कि कैसे समाज के विभिन्न भाग संगठित होते हैं और सामुहिक नियमों, भूमिकाओं और क्रियाओं का पालन करते हैं। संरचना स्वंय ही अदृश्य होती हैं जैसे यह मूक तौर पर अपने सदस्यों की क्रियाओ को आकार प्रदान करती हैं।

सामाजिक सरंचना की अवधारणा का प्रयोग समाजशास्त्र में जीव–विज्ञान के प्रभाव के परिणाम से शुरू हुआ। हर्बट स्पेंसर पहले समाजशास्त्री थे, जिन्होंने सामाजिक संरचना के शब्द का प्रयोग किया और उसकी तुलना मानवीय शरीर या जीव–विज्ञान अवयव से की हैं। उनके अनुसार समाज एक उत्तम अवयव हैं। मानवीय शरीर के विभिन्न भाग होते हैं और इसी प्रकार, सामाजिक संरचना के विभिन्न घटक होते हैं। मानवीय शरीर भी विभिन्न भागों जैसे–पैरों, हाथों, आँखों, कानों, पाचन व्यवस्था, आमाश्य आदि से बना होता हैं। यघपि ये सभी विभिन्न भाग अपने आप में शरीर नहीं हैं उनका सग्रह ही शरीर बनाते हैं या शरीर की रचना करते हैं। इसी प्रकार, शरीर के विभिन्न अवयव स्वंतत्र अस्तित्व बनाने में असमर्थ हैं। यह तब ही होता हैं जब ये सभी इकट्ठे होते हैं और एक सरंचना का अस्तित्व बनाते हैं। सामाजिक संरचना के घटक या इकाई व्यक्ति या समाज में मानवीय प्राणी हैं। जिन्हें समाज में प्रस्थिति प्राप्त हैं। सामाजिक संरचना की व्यवस्था हमेशा समान रहती हैं चाहें इसके अंतर्गत व्यक्तियों में समय समय पर बदलाव आता रहता हैं (मृत्यु गतिशीलता इत्यादि से)।

एक राष्ट्र, संगठन, युनिवर्सिटी, चर्च एंव समान सामाजिक इकाईयां संरचनात्मक व्यवस्था के रूप में निरन्तर अस्तित्व में रहती हैं, चाहे समय के अनुसार उनकी व्यक्तिगतता में बदलाव होता रहें।

सरंचना का चित्रात्मक उदाहरण

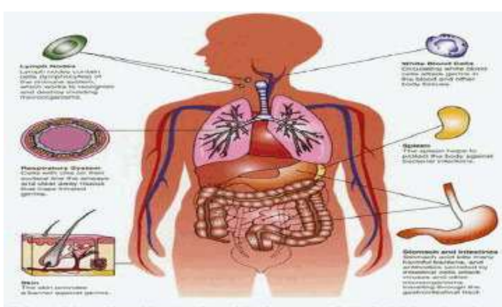

मानवीय शरीर की संरचना

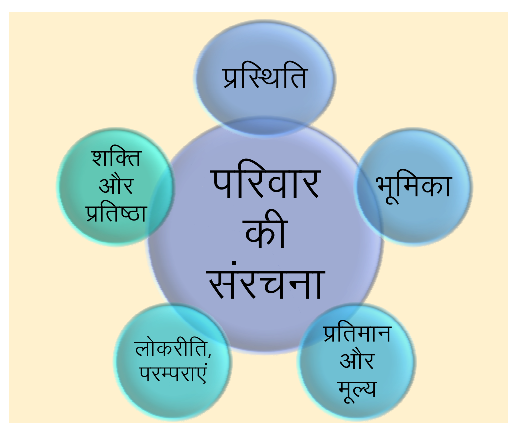

परिवार की संरचना

सामाजिक संरचना की कुछ महत्वर्पूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैं।

बाक्स–1

1. ए• आर• रेडक्लीफ ब्राउन के अनुसार सामाजिक सरंचना संस्थागत तौर पर नियन्त्रित या परिभाषित संबंधों में व्यक्तियों की व्यवस्था हैं। (जैसे पति और पत्नी के बीच संबंध)।
2. टालकॉट पारसन के अनुसार, सामाजिक सरंचना विशेष अंतसंबंधित संस्थाओं, एजेंसियों, सामाजिक प्रारूपों साथ ही साथ प्रस्थिति और भूमिकाओं पर व्यवस्थित तौर पर लागू होती हैं जोकि प्रत्येक व्यक्ति समुह में महसूस करते हैं।

इस प्रकार, सामाजिक सरंचना एक अमूर्त अस्तित्व की भांति हैं जिसके भाग गतिशील एंव परिवर्तनशील होते हैं।

विशेषताएं

सामाजिक सरंचना की मुख्य विशेषताएं हैं:

- सामाजिक सरंचना एक अमूर्त घटना हैं। यह विस्तृत तौर पर अदृश्य होती हैं। इनका भौतिक तौर पर अवलोकन नहीं किया जा सकता लेकिन यह समाज के प्रत्येक स्तर पर पाई जाती हैं। विस्तृत समाजशास्त्रीय स्तर पर, जैसे कि सयुक्त राज्य संघ, सूक्ष्म समाजशास्त्रीय स्तर पर जैसे–माता–पिता एंव बच्चों के मध्य अंतक्रिया तक पाई जाती हैं।
- व्यक्ति, समाज में संस्था और सभा की एक इकाई होता हैं।
- यह सभी सस्थाएं और संगठन आदि एक–दूसरे से अंतसंबंधित होती हैं तथा ये समाज के सुचारू रूप से कार्यात्मकता के लिए अस्तित्व में आती हैं।
- प्रारूपात्मक और विभिन्नात्मक व्यवस्था सामाजिक संरचना के माडॅल (प्रतिमान) को बनाते हैं।
- सामाजिक सरंचना की इकाई सभी समाजों में समान होती हैं लेकिन उनका रूप हर समाज में अलग–अलग होता हैं।
- सामाजिक सरंचना अस्वाभाविक होती हैं क्योंकि वे किसी भी सामाजिक स्थिति में व्यवहार को निर्धारित करती हैं।

- ये सार्वभौमिक होती हैं क्योंकि समाज का सदस्य होने के नाते हम सामाजिक सरंचनाओं, अनौपचारिक छोटे समुहो (परिवार, मित्र) से औपचारिक बड़े समुहो (कार्यक्षेत्र, जनसंचारक संस्था) तक चारों ओर से घिरें हुए हैं।
- यह स्थिर होती हैं क्योंकि ये सरंचनाएं अस्तित्व में रहती हैं। जब हम पैदा होते हैं यह तब भी अस्तित्व में होती हैं तथा जब हमारी मृत्यु होती हैं तब भी यह अस्तित्व में होते हैं। अतः यह पीढ़ीयो तक चलती रहती हैं।
- सामाजिक संरचनाएँ समाज के ब्राहय स्वरूप को दर्शाती हैं जोकि समान रहता हैं। जबकि अंतः भागों में निरन्तर कार्यात्मकता पाई जाती हैं।

बॉक्स–2

सामाजिक सरंचना शब्द की पृष्ठभूमि

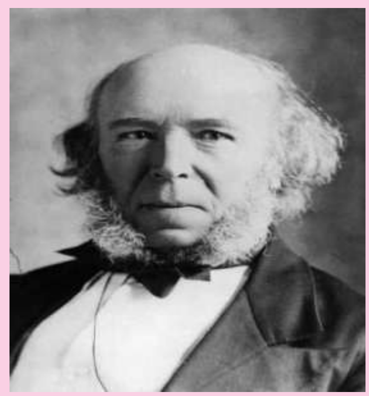
Herbert Spencer

सामाजिक सरंचना शब्द का प्रयोग समाजशास्त्रीय अध्ययन में हर्बट स्पेंसर द्वारा 1850 में मशहूर हुआ था। स्पेंसर जीव–विज्ञान की दो वस्तुओं की समानता (अवयव सरंचना और उद्विकास) से काफी आकर्षित हुए थे और सरंचना की अवधारणा का प्रयोग अपनी समाज की विषलेषण पद्धति पर प्रयोग किया तथा सामाजिक सरंचना के बारें में अपनें विचार व्यक्त किए। अपनी पुस्तक *"द प्रिंसिपलस ऑफ सशोलाजी"* में स्पेंसर ने सामाजिक सरंचना की अवधारणा का प्रयोग 'समाज की सरंचना' का 'एक जीवित अवयव की सरंचना' के साथ तुलना करके किया हैं। किसी भी अवयव की अपनी एक सरंचना होती हैं जोकि काफी आंतरिक, भागों से मिलकर बनी होती हैं। जैसेः–सिर, हाथ–पैर, एंव दिल आदि। ये सभी भाग अवयव के पूर्ण रूप को सुचारू रखने के लिए अपने–अपने कार्य करते रहते हैं। इसी प्रकार, स्पेंसर के अनुसार समाज की भी सरंचना होती हैं, जो अंतसंबंधित भागों से मिलती बनती हैं जैसेः–परिवार, धर्म इत्यादि। प्रत्येक तत्व का अपना एक कार्य होता हैं जो सामाजिक व्यवस्था की पूर्ण स्थिरता को बनाए रखने के लिए कार्य करते हैं।

स्पेंसर के अनुसार पूर्ण समाज जुड़ें हुए सरंचनाओं का एक परिमान हैं जैसे अवयव की व्यवस्था। इसके पश्चात् दुर्खीम ने सामाजिक सरंचना शब्द का प्रयोग किया। उन्होने इस शब्द का प्रयोग समाज में सामाजिक जीवन के पूर्ण स्वरूप के रूप में किया। इसके पश्चात् अमेरिका में जी• पी• मर्डाक, ए• आर• रेडक्लीफ ब्राऊन और अन्य ब्रिटेन में तथा फ्रांस में लेवी स्ट्रास ने इस अवधारणा का प्रयोग किया और इसे लोकप्रिय बनाया।

उपर्युक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सामाजिक सरंचना समाज को दर्शाती हैं। यह स्थिर हैं लेकिन इसके भाग गतिशील होते हैं। इसका विकास विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए होता हैं। इसका अर्थ विभिन्न भागों या अवयवों के इकाई तौर पर क्रमिक व्यवस्था से हैं। एक राष्ट्र, संगठन, यूनिवर्सिटी, धार्मिक संस्था आदि सामाजिक व्यवस्था की निरन्तरता के लिए काफी समय तक अस्तित्व में आती रहती हैं।

कियाकलाप–9.1

अपने परिवार और अपने समुदाय की समाज सरंचना को चार्ट के रूप में दर्शाएं।

बॉक्स –3

विद्यालय की संरचना का उदाहरण

स्कूल या शैक्षिक संस्था की अपना एक संरचना होती हैं। यह क्रमिक अवयवों की व्यवस्था होती हैं। जिनके अपने अपने कार्य होते हैं स्कूल के जितने भी अवयव होते हैं वो बदलते रहते है लेकिन उसकी संरचना में स्थिरता बनी रहती है। प्रत्येक वर्ष पुराने बच्चे स्कूल छोड़कर चले जाते हैं और नए बच्चे दाखिला लेते हैं कुछ प्रध्यापक वर्ग जाते हैं और उनकी जगह नए अपनी जगह लेते हैं। वे विद्याथीयों के साथ जिन्होनें सत्र परियोजना एवं क्रियाओं और नियमों एवं अधिनियमों के रूपों में सहभाग लेते है तथा संस्थाओं की आवश्यकताओं तथा जरूरतों के अनुसार नियमों और अधिनियमों का नवीकरण करते हैं। नए सदस्य अपनी कार्यप्रणाली की रचना करते है, विद्याथियों को कार्य सौंपते है तथा उनकी प्रगति का मूलयांकन करते है। वह तरिके जिसमें विभाग सदस्य तथा विद्यार्थी अपनी भूमिकाओं को निभाते है, लेकिन जिनके सामान्य प्रारूप समान होते है, और जो शैक्षिक समूह या स्कूल की पूर्ण संरचना में एक साथ उपयुक्त बैठते है।

हालांकि संरचना स्वयम अदृश्य होती है यह क्रियाओं को नीरवतापूर्वक आकार प्रदान करती है। सामाजिक संरचना के रूप तथा प्रभावों का विश्लेषण समाजशास्त्र को समाज तथा मानवीय कार्यों को समझने में विशिष्ट प्रकृति प्रदान करता है।

सामाजिक संरचना का संरक्षण

सामाजिक संरचना में मानवीय प्राणी स्वयं को सभाओं में कुछ निर्धारित उद्देश्यों के पालन के अनुसरण के लिए संगठित करके रखते हैं। यह उद्देश्य पूरा हो सकता है जब सामाजिक संरचना पद्धति पर आधारित हो जोकि इसके रखरखाव में मदद करेगी।

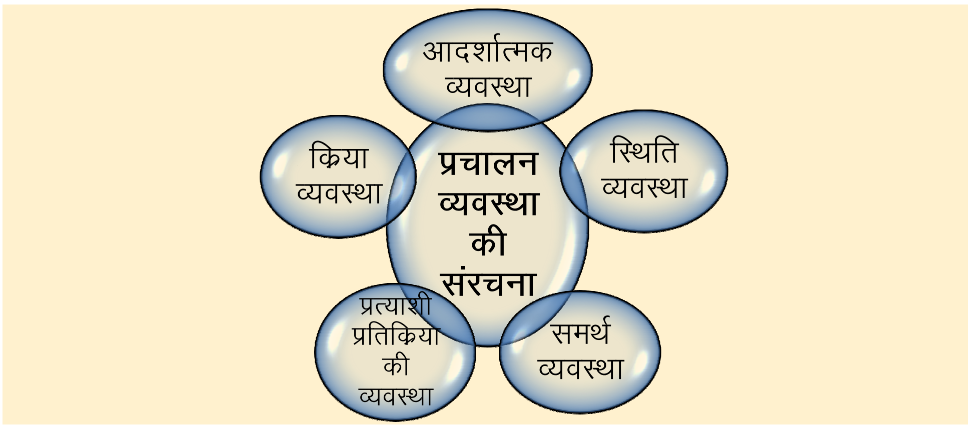

1. **आदर्शात्मक व्यवस्था**

   आदर्शात्मक व्यवस्था समाज के सदस्यों के मध्य विचारों और मूल्यों को प्रस्तुत करता हैं। लोग इन प्रतिमानों के प्रति भावनात्मक महत्ता को जोड़ते हैं। विभिन्न समूह, संस्थाएं और सभाएं, प्रतिमानों एवं मूल्यों के आधार पर एक दूसरे से संबंधित हैं। व्यक्ति समाज के मान्य प्रतिमानों के साथ जुड़ी भूमिकाओं का अनुकरण करते हैं।

2. **स्थिति व्यवस्था**

   स्थिति व्यवस्था से अभिप्राय व्यक्तियों की प्रस्थितियो एंव भूमिकाओं से हैं। व्यक्तियों की इच्छाएं, आकाक्षाएं, आशाएं भिन्न–भिन्न या अनगिणत होती हैं। समाज में प्रत्येक व्यक्ति की एक से ज्यादा प्रस्थितियां होती हैं। उदाहरण के लिए, परिवार में, एक पुरुष की प्रस्थिति पिता, भाई, बेटा, पति आदि की होती हैं। जब वह अपनी पत्नी के साथ अंतःर्क्रिया करता हैं, उसकी प्रस्थिति पति की हैं तथा वह अपनी पत्नी के साथ भाई एंव बेटे की भूमिका को नहीं निभा सकता। अन्य शब्दों में, सामाजिक सरंचना के निरन्तर कार्यात्मकता के लिए यह प्रस्थितियों तथा भूमिकाओं के सही बंटवारों पर निर्भर होता हैं।

3. समर्थ व्यवस्था

समाज, प्रतिमानों के सही सचांलन के लिए समर्थ व्यवस्था प्रदान करती हैं। यह विभिन्न भागों में एकात्मकता तथा सामजस्यं के सचांलन पर निर्भर होती हैं। सामर्थ साकारात्मक एंव नकारात्मक हो सकते हैं। जो सामाजिक प्रतिमानों को निभाते हैं, उन्हें पुरस्कृत किया जाता हैं तथा वो जो समाज के प्रतिमानों को नहीं मानतें, उन्हें समाज द्वारा दण्डित किया जाता हैं। सामाजिक सरंचना की स्थिरता सामर्थ व्यवस्था के परिणामों पर आधारित होती हैं।

4. प्रत्याशी प्रतिक्रिया की व्यवस्था

प्रत्याशी प्रतिक्रिया व्यवस्था व्यक्तियों को सामाजिक व्यवस्था में सहयोग करने के लिए बुलाती हैं। यह समाज के व्यक्तियों के मध्य सहभागिता होती हैं, जो सामाजिक सरंचना को गति प्रदान करती हैं। सामाजिक सरंचना के कार्यो की सफलता व्यक्तियों द्वारा अपनी भूमिकाओं की अनुभूति पर आधारित हैं। समाज के सदस्य सामाजीकरण की प्रकिया द्वारा मान्य व्यवहारों को सीखते हैं, जोकि उन्हें किसी अन्य के व्यवहार को किसी भी स्थिति में समझने में सहायता प्रदान करता हैं और मान्य प्रकृति के अनुसार कार्य करने में मदद करता हैं।

5. क्रिया व्यवस्था

टालकॉट पारसन ने सामाजिक क्रिया की अवधारणा पर विशेष जोर दिया हैं। उनके अनुसार सामाजिक संबंधों का जाल व्यक्तियों की क्रियाओं एंव अंतःक्रियाओं द्वारा उत्पन्न होता हैं। इस प्रकार, क्रिया व्यवस्था एक महत्वपूर्ण तत्व बन जाती हैं, जो सामाजिक संबंधों के जाल को क्रियाशील बनाती हैं और सामाजिक सरंचना के सेट को गतिशीलता प्रदान करती रहती हैं।

सामाजिक सरंचना के तत्व

एच• एम• जॉनसन के अनुसार सामाजिक संरचना के मूल तत्व वे हैं जो हमारे क्रियाओं को निंयत्रित करते हैं, जैसेः– प्रस्थिति, भूमिका, प्रतिमान, मूल्य, शक्ति और प्रतिष्ठा। हम प्रस्थिति और भूमिका पर प्रकाश ड़ालेंगे।

1) प्रस्थिति और भूमिका

प्रस्थिति और भूमिका दोहरी अवधारणा हैं। ये साथ–साथ चलते हैं। प्रत्येक प्रस्थिति के साथ भूमिका जूड़ी होती हैं। प्रस्थिति एक स्थिति होती हैं जिसे व्यक्ति समाज का या

समूह का सदस्य होने के नाते निभाता हैं। प्रत्येक समाज में, प्रत्येक समूह में व्यक्ति की कोई न कोई स्थिति या प्रस्थिति अवश्य होती हैं जिसे वह निभाता है और उसी के अनुसार वह भूमिका को भी निभाता हैं। यह समाज की सुचारू कार्यात्मकता में मदद करता हैं।

प्रस्थिति

सामान्यतः प्रस्थिति सामाजिक व्यवस्था में या समूह में व्यक्ति का रैंक या स्थिति होती हैं। प्रस्थिति से अभिप्राय व्यक्तियो ंकी विशेष समूह में स्थिति से हैं, जैसे परिवार, पड़ोस, क्लब और मित्रों के समुह में प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति के साथ कुछ अधिकार और कर्तव्य जुड़ें होते हैं। प्रत्येक समाज में व्यक्ति कुछ संख्या में प्रस्थितियो को निभाता हैं जोकि बदलती रहती हैं। जिसमें पुरानी प्रस्थिति की समाप्ति के साथ दूसरी या नई प्रस्थिति शुरू होती हैं।

राल्फ लिण्टन के अनुसार, प्रस्थिति सामाजिक सरंचना में प्राथमिक तौर पर वह स्थिति होती है, जो अधिकारों, कर्तव्यों और व्यवहारों की मान्य आशाओं को शामिल करती हैं। जोकि व्यक्ति विशेष की प्रस्थिति से संबंधित विशेषताओं पर आधारित होती हैं। उनके अनुसार, एक व्यक्ति एक समय में कई परिस्थितियां निभा सकता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति पति, वकील, जाति या धार्मिक सेक्ट का सदस्य हो सकता हैं। यहां दो तरीके हैं जिसके द्वारा व्यक्ति समाज में प्रस्थिति प्राप्त कर सकता हैं, यह आरोपित या अर्जित प्रस्थिति के द्वारा हो सकता हैं।

आरोपित प्रस्थितिः आरोपित प्रस्थिति एक सोपीं गई प्रस्थिति होती हैं। यह समाज या सामाजिक समूहों द्वारा बिना किसी विशेष मुक एवं राष्ट्रीयता द्धारा, माता–पिता आदि के द्वारा प्रदान किया जाता हैं। यह अस्वैच्छिक तथा जन्म पर आधारित होती हैं। किसी भी व्यक्ति का लिंग, जाति, धर्म, उम्र आदि आरोपित प्रस्थिति हैं। इसी प्रकार, जैविकीयता पर आधारित आरोपित दर्जा उम्र, लिंग और जाति हैं जिसे बदला नहीं जा सकता। जबकि कुछ चर्चित प्रस्थितियां नागरिकता या धर्म भी बदल सकती हैं।

अर्जित प्रस्थितिः अर्जित प्रस्थिति व्यक्ति के द्वारा प्राप्त की गई सामाजिक स्थिति होती हैं जो व्यक्ति के अपनी कोशिशो जैसेः–मुक्त, औपचारिक प्रतिस्पर्धा और अन्य द्वारा प्राप्त का जाती हैं। इसके अंतगर्त शिक्षा, व्यवसाय, शक्ति आदि घटक आते हैं। अन्य शब्दों में, यह वंशानुक्रमत नहीं होती या जन्म पर आधारित नहीं होती हैं। व्यक्ति की विवाह संबंधी स्थिति भी एक उचित उदाहरण हैं। इसी प्रकार, शैक्षिक योग्यता और व्यवसायिक स्थिति भी अर्जित प्रस्थितियां हैं।

प्रस्थिति की विशेषताएँ

1) प्रस्थिति की पहचान के बाह्रय चिन्ह

किंग्सले ड़ेविस के अनुसार व्यक्ति की सामाजिक स्थिति की पहचान उसको प्रस्थितियों को दर्शाती हैं। बाह्रय चिन्ह व्यक्ति की समाज में अपने प्रस्थिति की पहचान में मदद करते हैं। पहनावे का ढ़ग भी एक सूचक हैं। सैनिक और आर्मी अफसर, नर्से, डॉक्टर, वकील, पुलिसकर्मी, धार्मिक प्रचारक और पुजारी अलग–अलग प्रकार के पहनावे पहनते हैं। उनकी प्रस्थिति की पहचान उनके पहनावे से की जा सकती है।

2) प्रत्येक प्रस्थिति के अपने अधिकार, कर्तव्य और दायित्व होते हैं।

समाज की आदर्शात्मक व्यवस्था के द्वारा ही अधिकारों एंव कर्तव्यों की प्रकृति को निर्धारित किया जाता हैं। उदाहरण के लिए, यह अधिकारी का अधिकार हैं, कि वह अपने कर्मचारी से एक निश्चित व्यवहार की उम्मीद करें और एक कर्मचारी का यह दायित्व है कि वह उस उम्मीद के अनुसार अपने कार्य करें।

3) प्रस्थिति प्रशासन के प्रतिमान संदर्भात्मक होते है।

प्रस्थिति से संबंधित प्रतिमान एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति, विभिन्न प्रस्थितियों, विभिन्न रीतियों में भिन्न–भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, ईमानदार होना, सत्यवादी होना जैसे प्रतिमान सभी के लिए समान होने को दर्शाता हैं। लेकिन अभ्यास के तौर पर हम जानते हैं कि डॉक्टर एक मरीज़ को उसकी बिमारी की स्थिति के बारे में हमेशा सच्चाई नहीं बता सकता। इसी प्रकार, प्रतिमान हमेशा स्थिति पर आधारित होता हैं।

4) एक व्यक्ति की कई प्रस्थितियां हो सकती है।

प्रत्येक समाज में कई समूह होते हैं और प्रत्येक की उनसे संबंधित कई प्रस्थितियां होती हैं। यघपि समाज के व्यक्ति कई समूहों के सदस्य होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति अनेक प्रस्थितियों को निभाते हैं, जोकि एक स्थिति से दूसरी स्थिति से भिन्न होती हैं। समूह के प्रकार के अनुसार एक की प्रस्थिति दूसरे से भिन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, कॉलेज का विघार्थी अपने अध्यापक का शिष्य हो सकता हैं, दुकानदार के लिए ग्राहक, बहन के लिए भाई, अपने पिता के लिए पुत्र इत्यादि हो सकता हैं।

5) प्रस्थिति सामाजिक आदेश और सामाजिक स्थिरता को जोड़ते है।

हम सबका समाज में जन्म हुआ है, जिसमें पहले से ही प्रस्थितियां अस्तित्व में है। ये सब हमारे समाज की सरंचना को जोड़ती है। हम उन्हें दुबारा नहीं बना सकते। किसानों, सैनिकों, अध्यापकों, क्लर्क आदि की प्रस्थितियां हमारी रचना नहीं है। इसीलिए ये प्रस्थितियां समाज में नियंत्रणता और स्थिरता लाती है।

भूमिका

सामाजिक सरंचना में प्रस्थिति एक स्थिति हैं तथा भूमिका उस प्रस्थिति से संबंधित सामाजिक मान्यताएं हैं। भूमिका हमें दर्शाती है कि कैसे हमें प्राप्त सामाजिक स्थिति के अनुसार प्रस्थिति पर आधारित मान्य व्यवहार और अंतःक्रिया करनी चाहिए। यघपि, हमें प्रस्थिति प्राप्त है लेकिन हम उससे संबंधित भूमिका निभाते हैं। वेल्फ्रेड़ परेटो ने भूमिका की अवधारणा का प्रयोग 1916 में किया था। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंनें वकीलों, डॉक्टरों और शिल्पकारों आदि की समाजशास्त्रीय महत्ता को समझा जो उनकी भूमिकाओं को दर्शाते हैं।

लिटंन ने भूमिका को विशेष प्रस्थिति के व्यक्ति के मान्य व्यवहार से संबंधित बताया हैं। भूमिका प्रस्थिति की गतिशील प्रक्रिया हैं। व्यक्ति प्रस्थितियो को प्राप्त करते हैं और उनसे जुड़ी भूमिकाएं निभाते हैं। उदाहरण के लिए, वो व्यक्ति जिसने एक विघार्थी के तौर पर दाखिला लिया हैं उनकी भूमिका कक्षा लगाना तथा कार्य भार को पूरा करना होता हैं। इस प्रकार भूमिका विशेष सामाजिक प्रस्थिति से जुड़ा मान्य व्यवहार होता हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति पुत्र या पुत्री की प्रस्थिति को प्राप्त करता हैं और उनकी अपने माता–पिता से खान–पान एवं घर की उम्मीद भी होती हैं जबकि इसके बदले उसे मान्य व्यवहार करना पड़ता हैं जैसे कि उसे अपनी पढ़ाई को सही तौर पर करना, सही व्यवहार करे और माता–पिता को सत्कार प्रदान करना होता हैं। यह दोनों भूमिकाओं के उदाहरण हैं।

भूमिका की परिभाषाएं

डब्ल्यू एफ• ऑगबर्न और एम• एफ• निमकॉफ के अनुसार भूमिका एक सामाजिक मान्य और स्वीकार्य व्यवहारिक प्रारूप हैं जो समूह में विशेष प्रस्थिति से संबंधित कर्तव्यों और प्रतिष्ठाओं से संबंधित होते हैं।

राल्फ लिण्टन ने भूमिका को एक शब्द के रूप में दर्शाया हैं, जोकि सस्कृति प्रारूप के जोड़ से जुड़ा हुआ हैं। इसके अंतगर्त समाज द्वारा दिए गए अभिकृति, मूल्य और व्यवहार आते हैं तथा सभी व्यक्ति इन से जूड़ी प्रस्थितियों को निभाते हैं।

भुमिकाएं सामाजिक सरंचना के महत्वपूर्ण घटक हैं। यह समाज में स्थिरता लाते हैं। प्रस्थिति और भूमिका सस्कृति मे भिन्न होते हैं। प्रत्येक सामाजिक प्रस्थिति का अपना सस्कृतिक आधार होता हैं।

भूमिका, व्यक्ति के अधिकार, दायित्व और प्रतिष्ठा होते हैं, जिससे व्यक्ति एक विशेष प्रस्थिति प्राप्त करते हैं। इसीलिए हमें याद रखना चाहिए कि समाज के सदस्य विभिन्न समय और जगह के आधार पर विभिन्न प्रस्थितियों को निभाते हैं। समाज विभिन्न प्रस्थितियो का जाल हैं और प्रत्येक प्रस्थिति से जुडे कुछ व्यवहार होते हैं जिसे हम भूमिका कहते हैं। एक प्रस्थिति से जुडी कई भूमिकाएं हो सकती हैं, भूमिकाओं का परिमान एक प्रस्थिति से जुड़ी विभिन्न भूमिकाओं का जोड़ होता है।

कियाकलाप–9.2

1) भारत और अमेरिका के अध्यापकों के अधिकारों और कर्तव्यों की तुलना करो।

2) भारतीय समाज और अमेरिकी समाज के अध्यापक–शिष्य संबंधों की तुलना करो।

3) उन सभी प्रस्थितियो की सूची बनाओं जो आपके माता तथा पिता को प्राप्त हैं।

भूमिका की विशेषताएँ

सामाजिक भूमिकाओं की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। ये इस प्रकार हैं:–

1) **भूमिका एक प्रस्थिति का कियात्मक पक्ष हैं:** इसके अंतर्गत क्रिया के विभिन्न प्रकार शामिल होते हैं। जिसे समाज की मान्यता के अनुसार व्यक्ति को निभाना

होता हैं। वह सभी भूमिकाएं जो एक व्यक्ति निभाता हैं वह उन सभी प्रस्थितियों पर आधारित होता हैं जिसे एक व्यक्ति प्राप्त करता हैं।

2) **भूमिका सीखी जाती है:** भूमिका व्यवहार का वह रूप हैं जोकि या तो समाजीकरण की प्रकिया द्वारा सीखा जाता हैं या अवलोकन द्वारा व्यक्ति इसे सीखता हैं।

3) **भूमिका का मनोवैज्ञानिक आयाम होता है:** भूमिका की अवधारणा में सामाजिक मनोवैज्ञानिकता का पक्ष शामिल होता हैं। व्यक्ति को बचपन से ही समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा मोवैज्ञानिक तौर से अपनी भूमिका को निभाना सीखाया जाता हैं चाहे वो बेटा या बेटी, भाई या बहन, माता–पिता, अध्यापक या क्लर्क आदि हो।

4) **भूमिकाएँ पारस्परिक होती है:** भूमिका में पारस्परिकता पाई जाती हैं। ये सिर्फ एक व्यक्ति की स्थिति के अनुसार मान्य व्यवहार को ही शामिल नहीं करती बल्कि अन्यों के उसके प्रति व्यवहार को भी शामिल करती हैं।

5) **भूमिकाओं की अपनी महत्ता होती है:** सभी भूमिकाएँ एक समान महत्ता नहीं रखती। कुछ भूमिकाएँ अन्यों के प्रति अधिक महत्ता रखती हैं। वे सभी भूमिकाएँ जो अधिक महत्वपूर्ण होती हैं उन्हें मूल भूमिका कहते हैं, जबकि वो भूमिकाएँ जिनकी ज्यादा महत्ता नहीं होती उन्हे सामान्य भूमिकाएँ कहते हैं। मूल भूमिकाएँ समाज के सगंठन के लिए मूल्यवान होती हैं, जबकि सामान्य भूमिकाएं व्यवहार की रोजमर्या की क्रियाओं को पूरा करने में मदद करती हैं।

6) **भूमिका गतिशील होती है:** भूमिकाएँ कई तरीके से गतिशील होती हैं। ये जैसे–जैसे व्यक्ति में विकास होता हैं निरन्तर बदलती रहती हैं। जैसे–जैसे भूमिका की अवधारणा बदलती हैं भूमिका पर आधारित विश्वास, मूल्य और वस्तुएं बदलती रहती हैं। वह भूमिका जिसको विशेष समय प्रस्तुत किया जाता हैं दूसरे समय पर उसे प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

7) **भूमिका क्रिया में प्रस्थिति होती है:** भूमिका क्रिया में प्रस्थिति का पक्ष होती हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ आती हैं जिसे व्यक्ति समाज की मान्यता के अनुसार निभाता हैं।

8) **इसके संचालन का क्षेत्र सीमित होता है:** प्रत्येक भूमिका का क्षेत्र सीमित होता हैं और भूमिका को उसी क्षेत्र के अंतर्गत निभाया जाता हैं। उदाहरण के लिए, एक पुलिस अफसर का कार्य पुलिस स्टेशन में अपनी भूमिका निभाना होता हैं लेकिन

जब वह अपने परिवार के साथ होता हैं उसकी यह भूमिका खत्म हो जाती हैं और उसकी जगह दूसरी भूमिका लेती हैं।

क्रियाकलाप–9.3

1- क्या तुम्हारी विद्यार्थी, बेटा या बेटी की भूमिका के मध्य कोई सघंर्ष होता हैं ?
2- क्या ऐसा ही सघंर्ष आपने माता या पिता के मध्य या एक व्यवसायिका के रूप में आपने देखा हैं।

प्रस्थिति तथा भूमिका के मध्य संबध

- भूमिका तथा प्रस्थिति आपस में संबंधित होते हैं।
- प्रस्थिति समूह या समाज में एक स्थिति हैं। भूमिका प्रस्थिति पर आधारित एक मान्य व्यवहार हैं।
- प्रस्थिति प्राप्त किए जाते हैं और भूमिकाएँ निभाई जाती हैं।
- प्रस्थिति और भूमिका दोनों गतिशील हैं और निरन्तर बदलती रहती हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के पास काफी सामाजिक प्रस्थिति या प्रस्थिति प्रतिमान होते हैं। प्रस्थिति प्रतिमान के अंतर्गत हमारा लिंग, व्यवसाय, नीति शास्त्रीय समूह, स्वैच्छित सभाएं और आदतें आती हैं। इसीलिए एक व्यक्ति के कई प्रस्थिति प्रतिमान हो सकते हैं जिसके अंतर्गत एक औरत होने के नाते वह सेल व्यवसायिका, माता, बेटी, बहन और स्वैच्छित सामाजिक कर्मचारी हो सकती हैं। इसी प्रकार भूमिका परिमान में विभिन्न प्रकार की भूमिकाएं और संबंध आते हैं जोकि समाज में आपके प्रस्थिति से संबंधित होती हैं।

सामान्यतः भूमिका प्रतिमान की अवधारण का प्रयोग उन विभिन्न भूमिकाओं तथा संबंधों से है जिसे समाज में दर्जे के परिणाम स्वरूप प्राप्त होती है, को दर्शाने के लिए किया गया है। उदाहरण के लिए, उच्च स्कूल का विद्यार्थी स्कूल में भिन्न–भिन्न व्यक्तियों से मिलता हैं जैसे विद्याथियों अध्यापकों, मुख्य अध्यापक, नेतृत्व मार्गदर्शक, स्कूल प्रशासन में व्यक्तिओं तथा स्व के सहचर सहपाठियों से अंतक्रिया करता हैं।

स्व, भूमिका प्रतिमान में भिन्न भिन्न व्यवहारों या भूमिकाओं को शामिल करता है। पर सहपाठी की सामाजिक प्रस्थिति की मांग के अनुसार ही अनुरूप करता है।

निष्कर्ष

सामाजिक संरचना में वे सामाजिक संगठन अंतःनिर्हित होते है जो सामाजिक संबधों के समय सम्मानित प्रारूपों पर आधारित होते है। ये मान्य मानकों तथा सांझे मूल्यों दवारा भी संचालित होते हैं। इसमें वह सामाजिक प्रस्थिति शामिल होती हैं जो किसी व्यक्ति की समाज में प्राप्त स्थिति या पद पर आधारित होती हैं। यह प्रस्थिति आरोपित या अर्जित भी होती है। संरचना में वे सामाजिक भूमिकाएँ आती है जो किसी व्यक्ति का मान्य व्यवहार होती है जिसे व्यक्ति को प्राप्त सामाजिक स्थिति या प्रस्थिति के अनुसार अधिभोग करना होता हैं ।

शब्दावली

- **अर्जित प्रस्थितिः** यह वह प्रस्थिति हैं जिसे व्यक्ति अपनी कुशलता एवं योग्यता से प्राप्त करता हैं।
- **आरोपित प्रस्थितिः** यह प्रस्थिति व्यक्ति को उसके जन्म से प्राप्त होती हैं।
- **विविध भूमिकाः** विविध भूमिकाओं की अवधारणा से अभिप्राय उन जटिल भूमिकाओं से हैं जो न केवल एक ही प्रस्थिति से जूड़ी होती हैं। उदाहरण के लिए, एक प्रोफेसर पिता, पुत्र, पति, भाई, दोस्त, नागरिक आदि भी भूमिका होती हैं।
- **भूमिकाः** भूमिका व्यक्ति का मान्य व्यवहार होता हैं जो विभिन्न प्रस्थितियो में निभाया जाता हैं।
- **भूमिका संघर्षः** जब व्यक्ति की कई भूमिका प्रतिमान होती हैं जिसमें उसकी एक भूमिका का अन्य भूमिकाओ से संघर्ष होता हैं। उदाहरण के लिए जब एक अध्यापक निरिक्षणकर्ता के कार्य पर होता हैं और अपने मित्र के पुत्र को बेइमानी करते हुए देखता हैं। तब उस स्थिति में वह इस चिंता मे होता हैं कि उस विद्यार्थी की सूचना करनी चाहिए या नहीं।
- **भूमिका प्रतिमानः** **राबर्ट मर्टन** ने भूमिका प्रतिमान की अवधारणा को प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार एक प्रस्थिति के साथ काफी भूमिकाएँ जूड़ी होती हैं। जैसे एक विद्यार्थी अपने भूमिका

के अन्तर्गत शिष्य की भूमिका, अन्य विद्यार्थियों के साथ मित्र की भूमिका, पुस्तकालय को प्रयोग करने वाले की भूमिका और स्कूल टीम के सदस्य की भूमिका को शामिल करेगा।

- **प्रस्थितिः** प्रस्थिति से अभिप्राय व्यक्ति की सामाजिक स्थिति से हैं।

- **प्रस्थिति प्रतिमानः** **राबर्ट मर्टन** द्वारा इस अवधारणा का प्रयोग पहली बार किया गया था। प्रस्थिति के अन्तगर्त यह माना जाता हैं कि कुछ ऐसे प्रस्थिति होते हैं जिनकी महत्ता अन्य प्रस्थिति के साथ ही होती हैं। उदाहरण के लिए, पति–पत्नी, माता पिता एवं बच्चो, अध्यापक–विद्यार्थी, डॉक्टर, मरीज आदि की प्रस्थिति।

- **संरचना :** विभिन्न भागों की कमिक व्यवस्था को सामाजिक संरचना कहते हैं।

अभ्यास

प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 1–15 शब्दों के बीच दीजिए:

1. सामाजिक संरचना की अवधारणा का क्या अर्थ हैं ?
2. वह कौन सा पहला समाजशास्त्री है जिसने सबसे पहले सामाजिक संरचना शब्द का प्रयोग किया ?
3. शब्द 'संरचना कहॉ से लिया गया हैं ?
4. सामाजिक संरचना के सामाजिक तत्वों के नाम लिखो ?
5. *'समाजशास्त्र के सिद्धान्त'* पुस्तक किसने लिखीं हैं ?
6. प्रस्थिति क्या हैं ?
7. सामाजिक प्रस्थिति के दो प्रकारो के नाम बताओ।
8. आरोपित तथा अर्जित प्रस्थिति की अवघारणा किसने दी हैं?

9. आरोपित प्रस्थिति के कुछ उदाहरण लिखो ?
10. अर्जित प्रस्थिति के कुछ उदाहरण लिखो ?
11. भूमिका को परिभाषित करो।
12. भूमिका की कोई दो विशेषताओं को बताइएं।

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर 30–35 शब्दों में दीजिए:

1 सामाजिक संरचना को परिभाषित कीजिए?
2 प्रस्थिति तथा भूमिकाओं के मध्य दो समानताओं को लिखिए ?
3 परिवार की संरचना का चित्राणत्मक वर्णन करो ?
4 आरोपित तथा अर्जित प्रस्थिति के मध्य अंतर बताइए।
5 किस प्रकार भूमिका एक सीखा हुआ व्यवहार है।
6 प्रस्थिति तथा भूमिका को संक्षिप्त रूप में लिखो ?
7 प्रस्थिति क्या है ?
8 भूमिका प्रतिमान क्या है ?
9 भूमिका संघर्ष से आप क्या समझते उदाहरण सहित बताओ ?

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 75–85 शब्दों में दीजिये:

1. सामाजिक संरचना की तीन विशेषताएं बताओ?
2. आरोपित प्रस्थितियां क्या है। इसके कुछ उदाहरण लिखो ?
3. भूमिका सामाजिक संरचना का एक तत्व है। संक्षिप्त रूप में लिखिए।
4. प्रस्थिति सामाजिक संरचना का एक तत्व है। संक्षिप्त रूप में चर्चा किजिए।
5. प्रस्थिति तथा भूमिका किस प्रकार अर्न्त सम्बनधित है? व्याख्या कीजिए ?

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 250–300 शब्दों में दीजिए:

1 सामाजिक संरचना को परिभाषित कीजिए तथा इसकी विशेषताओं पर विचारविमर्श कीजिए ?

2 सामाजिक संरचनाओं को बनाए रखने के लिए कौन सी व्यवस्था सहायक है ?

3 सामाजिक संरचना क्या है। सामाजिक संरचना के तत्व क्या है ?

4 प्रस्थिति को परिभाषित कीजिए। इनकी विशेषताओ को विस्तृत रूप मे लिखिए ?

5 भूमिका को परिभाषित कीजिए। इसकी विशेषताओ को विस्तृत रूप में लिखिए ?

अध्याय 10

सामाजिक स्तरीकरण

मुख्य बिन्दुः

10.1 अवधारणा

10.2 स्वरूप

10.2.1 जाति

10.2.2 वर्ग

परिचय

सामाजिक असमानता जीवन का एक ऐसा तथ्य है जो प्रत्येक समाज में पाया जाता हैं। कुछ छोटे बच्चे स्कूल जाते हैं जबकि कुछ किशोर सुबह अखबार बेचते हैं या ट्रेफिक लाइट पर कुछ सामान बेचते हैं। इसी तरह कुछ बच्चे घर पर रहते हैं और उनके परिवार द्वारा उनका ध्यान रखा जाता हैं जबकि बाकी बच्चे सड़को पर कलाबाजी करते हैं और आशा करते हैं कि उन्हें कुछ पैसे मिल जाएंगे जिससे वे खाने के लिए कुछ खरीद सकेगें। यह सब उदाहरण सामाजिक असमानता को दर्शाते हैं जोकि हर समाज में पाए जाते है और जाति, वर्ग, लिंग और शक्ति संबंध के आधार पर यह प्रत्यक्ष रूप में पाए जाते हैं।

समाज में असमानता सम्पति, प्रतिष्ठा और शक्ति के आधार पर विभिन्न मात्रा में पाई जाती हैं। इस प्रकार, सभी समाजों की मूल विशेषता असमानता होती हैं। ज्यादातर असमानताएँ समाजिकीय प्रारूप वाली होती हैं, जोकि सामाजिक नियमों और प्रतिमानों द्वारा सचांलित होती हैं। जिन व्यक्तियों के पास समान शक्ति, प्रतिष्ठा और संपत्ति नहीं होती उनका जीवन मौका सस्थांगत प्रारूप उनकी जीवन शैली, सांस्कृतिक प्रारूप और उनका शिष्टाचार, विचारधारा तथा विश्वास भिन्न होते हैं।

समान सेवा या सम्पत्ति पर अधिकार, शक्ति एंव योग्य के आघार पर विपक्ष से बचाव तथा प्रतिष्ठा या सामाजिक सम्मान, ये तीन चीजें हैं जो भयभीत करने वाली है, लेकिन सब से अधिक अभिलाषित होती है और प्रत्येक समाज में लोगों द्वारा प्राप्त की जाती हैं। ये तीनों चीजें व्यक्तियों तक भिन्न–भिन्न मात्रा में पहुचंती हैं। जिसका परिणाम, प्रत्येक समाज में स्थिति की श्रेणीबद्वता या समूहों की स्थिति बन जाती है जिससे स्ट्राट्रा कहते हैं। प्रत्येक स्ट्राट्रा अन्यों से सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, शक्ति की मात्रा के आधार पर अलग होता हैं, जिसे हम स्तरीकरण कहते हैं। इसी प्रकार, स्तरीकरण एक सामाजिक घटना होती हैं जिसके अंतर्गत समाज में लोगो को प्रस्थिति या भूमिका के आघार पर समूहों में विभाजित किया जाता हैं। एक समूह या स्ट्राट्रा के लोग सामान्य रूचियों, सम्मान, पहचान और जीवन शैली के आधार पर अन्य सामाजिक समूह या स्ट्राट्रा के सदस्यों से अलग होते हैं। सामाजिक असमानता सभी समाजों में आमतौर पर पाई जाती हैं, लेकिन जब यह भिन्न स्ट्राट्रा या समूह बनते हैं तब यह स्थिति सामाजिक स्तरीकरण की ओर बढ़ती हैं।

समाजशास्त्रीयों ने सामाजिक स्तरीकरण के शब्द का प्रयोग उस व्यवस्था के लिए किया हैं, जिसके अंतर्गत समाज में लोगों को पदो के आधार पर श्रेणीबद्व किया जाता हैं। यह श्रेणीबद्वता लोगों की पहचान को आकार प्रदान करती है उन्हे प्रभावित करती हैं। ज्यादातर श्रेणीबद्वता लोगो के साधनों और उपलब्धियों की पहुँच को निर्धारित करती हैं।

बॉक्सः 1

परिभाषाएं

डबल्यू• एफ• आगबर्न और एम• एफ• निमॅकाफः यह वह प्रकिया हैं जिसमें व्यक्तियों और समूहों को दर्जे की श्रेणीबद्वता में अनेक पदो के अनुसार ऊँच एंव नीच की श्रेणी में डाला जाता हैं, उसे स्तरीकरण कहते हैं।

जॉर्ज ए• लुण्डबर्गः– एक स्तरीकृत समाज वह होता है जो लोगों में असमानता,

विभिन्नता पर आधारित होता है तथा लोगों द्वारा उनका ऊँचता एंव निम्नता के आधार पर मूल्याकन किया जाता हैं।

पासकल गिंसबर्टः— सामाजिक स्तरीकरण समाज का स्थाई समूहों की श्रेणी में विभाजन हैं, जो ऊँचता एंव निम्नता के संबंध के आधार पर एक दूसरे से संबंधित होता हैं।

मालवीन ट्यूमीनः— सामाजिक स्तरीकरण, सामाजिक समूहों या समाजों में स्थिति की श्रेणीबद्वता हैं, जोकि शक्ति, सम्पत्ति, सामाजिक मूल्याकंन के आधार पर असमान होती हैं।

एनंथानी गिडिगसः— स्तरीकरण विभिन्न समूहों के लोगों की सरंचनात्मक असमानताएं होती हैं।

रेमण्ड डब्लू मूरेः— सामाजिक स्तरीकरण समाज का उच्च एंव निम्न सामाजिक इकाई में क्षैतिज विभाजन होता हैं।

विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम सामाजिक स्तरीकरण की कुछ विशषताएँ आंक सकते हैं।

1. यह प्रकृति में सामाजिक होती हैं जैसे कि यह न सिर्फ व्यक्ति की बल्कि समाज की विशेषता होती हैं।
2. यह पीढ़ीयों तक अपना अस्तित्व बनाए रखती हैं। स्तरीकरण बहुत समय पहले से अस्तित्व में हैं वह नयी घटना नहीं हैं।
3. यह सार्वभौमिक होती हैं ओर प्रत्येक समाज में पायी जाती हैं।
4. यह भिन्न—भिन्न समाजों में अपने रूप और मात्रा के आधार पर अलग होती हैं।
5. यह समाज में लोगों के विश्वासों पर एवं असमानता पर आधारित होती हैं। एक समूह का सदस्य यह विश्वास करता हैं कि वह समूह के अन्य सदस्यों से अलग हैं।
6. यह व्यक्तियों के जीवन के मौके, जीवन शैली और गतिशीलता को प्रभावित करती हैं।

सामाजिक स्तरीकरण का सिद्वान्त

सामाजिक स्तरीकरण के मुख्य सिद्वान्त इस प्रकार हैंः—

1. यह समाज की विशेष विशेषता हैं, क्योंकि इसी कारण लोगों की निजी योग्यता को ध्यान में रखें बिना सामाजिक संसाधनों का असमान विभाजन होता हैं।
2. यह पारिवारिक स्थिति से जुड़ा होता है और इसी प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांरित होता हैं। जैसे कि बच्चे अपने माता–पिता की सामाजिक स्थिति को समझते हैं। एक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति अरोपित हो सकती हैं और विवाह के साथ यह दृढ़ बनती हैं।
3. यह पीढ़ी दर पीढ़ी पाई जाती हैं क्योंकि इसे पूर्वाग्रह के द्धारा सहयोग प्राप्त होता हैं। इन्हे पूर्वनिर्घारित, अभिवृति, कठोर विश्वास तथा निश्चित घारणा के द्धारा परिभाषित किया जा सकता हैं। जिसे एक समूह द्धारा दूसरे के खिलाफ प्रयोग किया जाता हैं।
4. जो सामाजिक सुविधाओं का लाभ उठाते हैं, वे स्तरीकरण को अपना समर्थन देते हैं, लेकिन जो शोषण और पीड़ा का अनुभव करते हैं, वो इसका विरोध करते हैं।

सामाजिक स्तरीकरण के मुख्य स्वरूप

स्तरीकरण के मुख्य स्वरूप इस प्रकार हैः

1 जाति
2 वर्ग
3 जागीर
4 दासत्व

जाति वशांनुगत सामाजिक अंत समूह हैं, जिसमें व्यक्ति को पद प्राप्त होता हैं और इससे कुछ अधिकार तथा दायित्व जुड़ें होते हैं, जो किसी विशेष समूह में जन्म पर आधारित होते हैं। आधुनिक समाज में **वर्ग** पर आधारित स्तरीकरण प्रभावी पाया जाता हैं। इसके अंतर्गत व्यक्ति की स्थिति उसकी योग्यताओं एवं उपलब्धियों पर आधारित होती हैं और सहुलतों का प्रयोग करना जन्म पर आधारित विशेषता नहीं हैं। मध्यकालीन युरोप की **जागी़र** प्रथा अलग प्रकार की स्तरीकरण व्यवस्था को दर्शाती हैं। जोकि विशेष महत्व, जन्म को और साथ ही साथ सम्पत्ति एवं स्वामित्व को भी देती हैं। प्रत्येक जगी़र का अपना एक राज्य होता था। दास प्रथा, आर्थिक आधार पर पाया जाता था। **दासत्व** में, हर एक दास का अपना मालिक होता था। मालिक की शक्ति अपने दास पर अनगिणत होती थी। इस अध्यय में हम जाति और वर्ग पर ध्यान केन्द्रित करेगें।

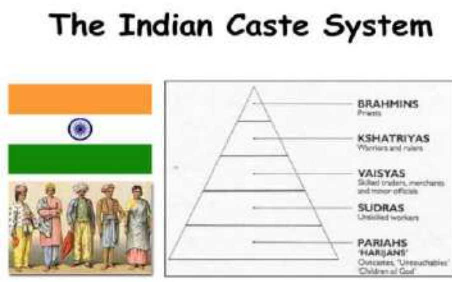

जाति व्यवस्था

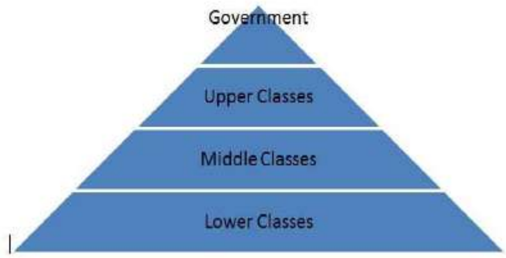

वर्ग व्यवस्था

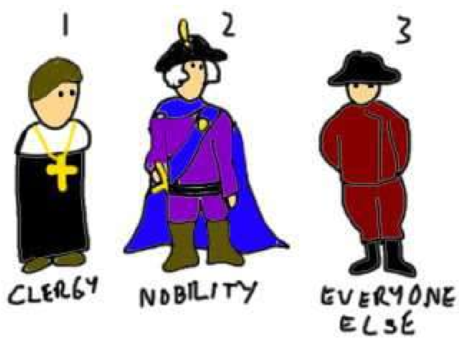

जागीरदारी व्यवस्था

दास व्यवस्था

जाति

जाति शब्द को स्पेनिश और पुर्तगाली के शब्द *"कास्टा"* से लिया गया हैं, जिसका अर्थ नस्ल हैं। भारतीय संदर्भ में, इस शब्द से अभिप्राय विस्तृत सस्थागत व्यवस्था से हैं, जिसे भारतीय भाषा में अलग शब्द वर्ण और जाति द्वारा दर्शाया गया हैं। वर्ण तथा जाति को जाति के समान बताया गया हैं। यघपि, दोनों समान नहीं होते हैं। वर्ण नाम था जो समाज के चार वर्गीकृत समूहों को दिए गए थे जैसे ब्राहम्ण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्व। इस व्यवस्था को समाज में लोगों के मध्य सहमति और सहयोग लाने के लिए लाया गया और यहां तक ब्राहमण वर्ण से जुड़े लोगों को अन्यों द्वारा सत्कार दिया जाता था। वर्ण व्यवस्था में लोगों का वर्ण उनके जन्म पर आधारित माना जाता था न कि उनकी गुणताओं के आधार पर। तब जाति व्यवस्था में परिवर्तित होने लगा। जाति एक सामान्य शब्द हैं, जिसे भारतीय भाषा में जाति का संस्था के रूप में लिया गया, विशेषतौर पर वर्ण व्यवस्था श्रम के विभाजन पर आधारित थी तथा व्यवसायों का विभाजन पुजारी, सैनिक,

व्यापारी और छोटे कार्य जैसे नाई, जुते बनाने वाले के आधार पर था। वर्णो की संख्या चार थी, जबकि जाति (उपजातियों) की संख्या अनगिनत थी। भारत में, जाति और उपजातियों की संख्या तीन हजार से भी ज्यादा हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्तमान जाति व्यवस्था मूल वर्ण व्यवस्था का वर्णित रूप हैं।

कियाकलाप–10.1

1) फिल्मों में से कुछ घटनाओं/या दृश्यों की पहचान करो जिसमें आपने भारतीय समाज में पाई जाने वाली जाति असमानता को देखा हो।

2) जाति के आधार पर समाज में पायें जाने वाली भिन्नताओं को चर्चित करों।

जाति की विशेषताएँ

जी• एस• घुरीऐ ने जाति के सिद्वान्त पर आधारित कुछ विशेषताएँ दी हैं।

1. **समाज का खण्डात्मक विभाजनः** खण्डात्मकता का अर्थ समाज का खण्डों या भागों में विभाजन से हैं। जाति व्यवस्था में समाज का विभिन्न समूहों में खण्डन होता हैं और इसकी सदस्यता जन्म पर आधारित होती हैं। जातियों का विभाजन उप–जातियों में और उप–जातियों का उप–उप–जातियों में विभाजन पाया जाता हैं।
2. **अरोपित दर्जाः** जाति, जन्म के आधार पर निर्धारित होती हैं। यह वशांनुगत होती हैं और व्यक्ति इसे अपने माता–पिता द्वारा प्राप्त करते हैं। जाति चुनाव का विषय नहीं होती हैं।
3. **श्रेणीबद्वताः** जाति व्यवस्था में श्रेणीबद्वता पाई जाती हैं जैसे कि सभी जातियों का श्रेणीबद्वता में अपना विशेष स्थान होता हैं। यह श्रेणीबद्व व्यवस्था हैं जो सभी जातियों के पदो के स्थान को परिभाषित करती हैं।
4. **निश्चित व्यवसायः** जाति व्यवस्था व्यवसाय से जुड़ी हुई हैं। जैसे व्यक्ति अपनी जाति से जुड़ी परंपरागत व्यवसाय को ही अपनाता हैं और अन्य जातियों से जुड़े लोग इस व्यवसाय को नहीं अपना सकते। इसीलिए इसमे व्यवसाय का चुनाव नहीं पाया जाता, यह अपनी जातियों द्वारा ही प्रभावी होती हैं। जाति में एक से ज्यादा परंपरागत व्यवसाय पाए जाते हैं, लेकिन इसके सदस्यों में नियंन्त्रित चुनाव होते रहते हैं।

5. **अन्तर्विवाही:** जाति एक बंद समूह हैं और इसके अंतर्गत अपनी जाति से बाहर विवाह पर प्रतिबंध (मनाही) लगाया जाता हैं। अर्न्तविवाह विभिन्न उपसमूह जातियों में भी पाया जाता हैं। अर्न्तविवाह में व्यक्ति अपनी ही जाति में विवाह कर सकता हैं।
6. **खान–पान एंव सामाजिक अंतक्रियाओं में प्रतिंबधः** जाति व्यवस्था के अंतर्गत खान पान पर भी प्रतिबंध पाया जाता हैं। जिसमें किस प्रकार का खाना खाना चाहिए एवं किसके साथ सांझा करना चाहिए उसके नियम होते हैं। इसके अंतर्गत आहार एवं सामाजिक अंतक्रिया के कुछ नियम शामिल होते हैं, कौन क्या उपभोग करेगा और किससे आहार प्राप्त करेगा। यह नियम न सिर्फ जाति में बल्कि उपजातियों में भी पाए जाते हैं।
7. **शुद्वता एंव प्रदूषणः** जाति व्यवस्था शुद्वता एंव प्रदूषण पर आधारित खण्डात्मक व्यवस्था हैं। वो जातियां जिन्हें कर्मकाण्ड अनुसार शुद्व माना जाता हैं, उन्हे ऊँचा दर्जा मिलता हैं जबकि वह जातियो जिन्हें श्रेणीबद्वता में नीचा स्थान प्राप्त हैं उन्हें अशुद्ध माना जाता हैं।
8. **पारस्परिक निर्भरताः** श्रेणीबद्वता एवं कर्मकाण्ड में एक दूसरे से अलग और असमान होने के बावजूद भी ओर जातियों को एक दूसरे के पूरक और स्पर्धात्म समूह माना जाता हैं। जाति व्यवस्था में विभिन्न जातियों के मध्य अंतःक्रियाएं पाई जाती हैं। यह जजमानी व्यवस्था के द्वारा गावों में विभिन्न व्यवसायों का पालन करने वाली जातियों के मध्य पाई जाती हैं।

इस प्रकार, जाति व्यवस्था भारत की परंपरागत सामाजिक सगंठन की निरन्तरता को निश्चित करती हैं। लेकिन जाति व्यवस्था के कुछ अकार्य भी होते हैं, जैसे कि यह सामाजिक प्रतिबंधों और शुद्वता एवं अशुद्धता के द्वारा अवरोध पैदा करती हैं। जाति व्यवस्था की श्रेणीबद्वता में सबसे निम्न स्थान प्राप्त करने वाली जातियाँ शोषण एवं भेदभाव को महसूस करती हैं। खासतौर पर अछूत जातियाँ। अछूतता एक सामाजिक अभ्यास हैं, जोकि समूह द्वारा कर्मकाण्ड के अनुसार प्रदूषित मान कर किया जाता हैं और उन्हें बाकी लोगों से अलग करता हैं। वे व्यक्ति जिन्हें अछूत कहा गया हैं, वे समाज के उस भाग से हैं जिन्हें न सिर्फ निम्न स्थिति प्राप्त हैं बल्कि जिन्हें अन्य जातियों द्वारा अस्वच्छं माना जाता हैं और जिन्हें मानवीय समाज के लिए सही नहीं माना जाता हैं। यघपि, शिक्षा, आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण के कारण जाति व्यवस्था की सस्ंथा में काफी बदलाव आ रहा हैं।

जाति व्यवस्था में बदलाव

जाति, को एक सामाजिक बुराई और उपनिवेशवाद की योजना द्वारा भारतीयों को बाँटनें की अनुभूति ने राष्ट्रयावादी नेताओं को निम्न जातियों में सुधार लाने के लिए प्रोत्साहित किया। पूर्वी भारत में महात्मा, ज्योतिबा फूले, बाबा साहिब, अम्बेडकर; दक्षिण में पेरीयार ई• वी• रामासामये के द्वारा सुधारक योजनाएं चलाई गई और महात्मा गाँधी के द्वारा अछूतता के विरूघ अभियान चलाया गया तथा बी• आर• अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव किए। उत्तर–स्वंतत्र काल में, उग्र सुधारवादी सुधार शुरू हुआ।

जाति में सरंचनात्मक एंव कार्यात्मक आयामों में निम्नलिखित परिवर्तन आएं हैं

सरंचनात्मक परिवर्तन

1. ब्राहमणों की सर्वोच्चता कमजोर हो गई। आधुनिकीरण की प्रकिया के साथ वे समान सामाजिक दर्जे का लाभ नहीं उठाते, जैसा वह पहले करते थे।
2. जाति श्रेणीबद्वता में भी परिवर्तन आ रहा हैं। अब पहले की तरह श्रेणीबद्वता स्पस्ट रू‍प से नजर नहीं आती। औद्योगिकीकरण और नगरीकरण के साथ कई प्रकार के नये व्यवसायों का उद्‌भव हुआ हैं, जोकि पारम्परिक श्रेणीबद्वता में नहीं पाई जाती थी।
3. निम्न जातियों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए सवैंधानिक मापदंड बनाए गए हैं। परिणाम स्वरूप उनकी सामाजिक स्थिति की प्रकृति में काफी हद तक सुधार आया हैं।

कार्यात्मक बदलाव

1 अब जन्म सामाजिक प्रतिष्ठा का मूल आधार नहीं रहा हैं। सम्पत्ति, कुशलता, शिक्षा, क्षमता आदि सामाजिक प्रस्थिति को निर्धारित करने वाले मूल्यांकन हैं।

2 आज किसी भी जाति का वंशानुगत एकाधिकार व्यवसाय नहीं रहा हैं। अब कोई व्यक्ति अपनी रूचि एवं कुशलता के आधार पर कोई भी व्यवसाय चुन सकता हैं। आधुनिक उघोगो ने सभी प्रकार के व्यवसाय का विकास किया हैं, जोकि जाति के नियमो पर आघारित नहीं हैं।

3 पश्चिमी दार्शनिकता, सहविद्या विश्वविघालय (जहां लड़का–लड़की मिलकर पढ़ते है) एक ही जगह पर लड़का–लड़की जो भिन्न–भिन्न जातियों के भी हैं, मिलकर काम करते हैं और कानूनी सविधानों ने अन्त:विवाही प्रतिबंधों को कम कर दिया और दूसरी जाति के साथ विवाह को भी कानूनी वैद्यता प्रदान कर दी है। यघपि,

काफी बदलाव आ गया हैं, अन्तःविवाह अभी भी भारत में विवाह का प्रबल आधार हैं।

4 अब जातियों के मध्य सामाजिक अंतक्रियाएँ भी बढ़ रही हैं, मुख्य तौर पर नगरीय क्षेत्रों में जहां पर अंतःजातिय विवाह पर कम प्रतिबंध पाए जाते हैं।

5 शिक्षा और आधुनिकीकरण के कारण हिन्दु सामाजिक जीवन में प्रदुषण एवं शुद्वता के विचारों का महत्व कम हो गया हैं। इसके अतिरिक्त, शहरों में सामूहिक तौर पर रहने से लोगो के लिए जाति के प्रारूपों और व्यवहारो को रोजमर्रा के जीवन में निभा पाना मुश्किल होता हैं।

6 जजमानी व्यवस्था का संबंध नगरीय क्षेत्र में बाजार संबंध बन गया हैं।

7 पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण के बढ़ाव का परिणाम सभी जातियों की जीवन शैली में बढ़ोतरी हो रही हैं।

यघपि, जाति व्यवस्था के कार्यो और संरचना में परिवर्तन ने इस व्यवस्था को कमजोर कर दिया हैं और अब यह कम कठोर हैं। जाति व्यवहार को त्यागने का परिणाम व्यक्तिवाद के उदारवादी विचार, आधुनिक शिक्षा आदि हैं।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन के कारक

1. **सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनः** जाति व्यवस्था की कई सामाजिक एवं धार्मिक आंदोलनो द्वारा आलोचना की गई हैं। उदाहरण के लिए, राजा राम मोहन द्वारा चलाया गया ब्रहम समाज आंदोलन ने जाति विभाजन की बाधाओं को नकारा और सार्वभौमिकवाद एवं भाईचारा के लिए काम किया।
2. **आधुनिक शिक्षाः** देश में ब्रिटिशों के द्वारा आधुनिक शिक्षा की प्रस्तुती ने लोगों की जाति व्यवस्था के प्रति विचारों में बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की हैं। इसने काफी उदारवादी विचारों की प्रस्तुती की हैं, जिसका परिणाम लोगों में खुले विचारों में बदलाव आया हैं।
3. **औद्योगिकीकरणः** औद्योगिकीकरण ने लोगों को जीवन के नए स्त्रोतों को उपलब्ध कराया और उनकी व्यापारिक गतिशीलता को संभव बनाया। इन सभी ने जाति के प्रभुत्व को कमजोर बनाने में मदद की।
4. **नगरीकरणः** नये कस्बों और शहरों के आने से नए सस्थाओं जैसेः होस्टल, भोजनालय, थिएटर, क्लब और स्कूल आदि अस्तित्व में आए। इसके अंतर्गत जाति प्रतिबंधों और निषिद्व का अवलोकन करना असंभव हैं। अनामत्व, अधिक जनसंख्या, प्रवास, धर्मनिरपेक्षता और लचीलेपन पर आधारित शहर ने जाति व्यवस्था की गतिविधि को मुश्किल बना दिया हैं।

5. **यातायात और संचार का विकासः** आधुनिक यातायात एंव संचार के विकास ने विभिन्न जातियों में नजदीकी ला दी है और इसके साथ व्यक्तियों पर इसकी प्रभुत्व को कम करने में मदद की हैं।
6. **भौतिकवाद, व्यक्तिवाद और प्रंशसनीय के उदारवादी विचारः** सम्पत्ति, व्यक्तिवादिता और उपलबधियों की बढ़ती महत्ता के परिणाम स्वरूप जाति की विचारधारा में कमजोरी आई हैं।
7. **सरकारी प्रयासः** जाति व्यवस्था को आद्यात पहुँचाने में कानून, प्रशासनिक और सवैंधानिक प्रावधान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की हैं।

इस प्रकार, जाति प्रतिष्ठा अब कर्मकाण्ड प्रस्थिति पर आधारित नहीं हैं। शिक्षा, आर्थिक बल, राजनीतिक नेटर्वक और संख्यात्मक बल आधुनिक जाति व्यवस्था के प्रभुत्व को निर्धारित करते हैं। 1980 से जो नया विकास हुआ हैं, वह जाति की राजनीतिवादिता की प्रक्रिया हैं। इसकी शुरूआत राजनीतिक दलों के उद्भव के साथ हुई और प्रत्येक राजनीतिक दल जाति एकता के आधार पर चुनाव में जीतने का प्रयास करते हैं। जाति ने राजनीति में अपना रास्ता बना लिया हैं और कर्मकाण्ड इकाई से यह रूची समूह बन गया हैं।

यह टिप्पणी करना हितार्थी है कि आधुनिक समय में भी उच्च जातियाँ अपना समर्थन जाति मापदण्ड को देती हैं और जाति प्रथा का अवलोकन विवाह, धार्मिक तथा नातेदारी पक्षों के लिए सीमित हैं, जबकि निम्न जातियों के लिए जाति तत्व बहुत महत्वपूर्ण हैं। यहां अब जाति पहचान की नई राजनीति अस्तित्व में हैं। जाति पहचान कुछ सामाजिक समूह के सदस्यों द्वारा अनुभव किए गए अन्याय की अनुभूति को शामिल करती हैं। वे समूह, जिनकी अब महत्ता हैं, वह अन्य समूहों से सशक्तिकरण, प्रतिनिधत्व और पहचान को पाने की कोशिश करते हैं। वे यह अपने जाति समूह के घटकों को दर्शाकर और उनकी महत्ता बताकर इन्हें प्राप्त करते हैं। जिनका प्रयोग पहले उनके दर्जे को गिराने के लिए किया जाता था। वे समान विशेषताओं का प्रयोग अब अपने स्वअवस्था और अलग पहचान के लिए किया जाता हैं। वे समानता को नहीं ढूढ़ते बल्कि विभिन्नता के आधार पर आत्म पहचान को खोजते हैं।

बॉक्स–2

जाति पंचायत स्वंय को गांव की नैतिकता का सरंक्षक मानते हैं। अक्तूबर 2004 में झझर जिला के असाधा गांव में राठी खाप पंचायत ने सोनिया को जिसका एक साल पहले विवाह हुआ था, को राम पाल के साथ अपने विवाह को खत्म करने और अजन्मे बच्चें को मारने तथा अपने पति को भाई मानने का आदेश दिया था। उनका मत था

अगर उसे गांव में रहना हैं तो उसे यह करना होगा। उनका गुनाह सिर्फ इतना था कि दोनों एक ही गोत्र से थे, यहां तक कि भारत विवाह कानून के द्वारा इन्हें सयोजन की मान्यता मिल गई थी। जब इस घटना में उच्च न्यायालय के द्वारा हस्तक्षेप किया गया उसके पश्चात् ही ये दोनों एक साथ रह पाए। इन्हें हरियाणा सरकार से सुरक्षा प्रदान की गई थी।

(संडे टाइमस आफॅ इण्डिया, नई दिल्ली 2006)

कियाकलापः—10.2

1) क्या आप "प्रतिष्ठा हत्या" का अर्थ जानते हैं ?

2) वह कोन से कारण हैं जिन्हें 'प्रतिष्ठा हत्या के लिए जिम्मेवार ठहराया जा सकता है?

3) क्या आपने अपने क्षेत्र में किसी प्रतिष्ठा हत्या का उदाहरण देखा हैं ?

4) क्या आप इस व्यवस्था से सहमत हो ?

वर्ग

सामाजिक वर्ग, समाजिक स्तरीकरण का ही रूप हैं। जोकि ज्यादातर औद्योगिक समाजों में पाया जाता है। इसे आमतौर पर उन लोगो के स्ट्राट्रा के रूप में परिभाषित किया गया हैं, जिन्हें सम्पति, आय, व्यवसाय आदि के आधार पर समाज में समान समाजिक दर्जा प्राप्त हैं। इस प्रकार, वर्ग विस्तृत स्तर पर लोगो का वह समुह होता है जो समाज के आर्थिक संसाधनो को सांझा करते हैं यह एक प्रस्थिति श्रेणीबद्धता है जिसमें व्यक्तियों एवं समुहों को सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्ति के आधार पर श्रेणीयों में बांटा जाता हैं। यह आर्थिक सफलता और सम्पति के चयन के द्वारा किया जाता हैं।

आर. एम. मैकाइवर और सी. एच. पेज के अनुसार सामाजिक वर्ग की संरचना इन्हे शामिल करती हैं

1. सामाजिक समुहों की श्रेणीबद्धता
2. उच्च व निम्न स्तरीकरण की मान्यता
3. कुछ मात्रा तक संरचना की स्थिरता

बॉक्स 3

परिभाषाएं

मेरिस गिन्सबर्ग के अनुसार, एक सामाजिक वर्ग दो या दो से ज्यादा लोगो का समुह हैं जिसमें सामाजिक तौर पर समुदाय के सदस्यों को उच्चता एवं निम्नता के पद में बांटा जाता हैं।

मैक्स वेबर के अनुसार, वर्ग उन व्यक्तियों का इकट्ठ हैं जिनके पास सामग्री की प्राप्ति के लिए सामान मौके हों और जो समान जीवन के स्तर को प्रदर्शित करतें हों।

वर्गो के प्रकार

डब्ल्यू. लियोड़ वॉनन ने वर्गो को निम्नलिखित किस्मों में विभाजित किया गया हैं।

1. उच्च वर्ग, में धनी कर्मचारी और उद्योगपति जिनका संसाधनों के उत्पादन पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण होता हैं ,शामिल हैं
2. मध्यम वर्ग, जिसमें सफेदपोशी कर्मचारी और व्यवसायिक आते हैं जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, वकील आदि।
3. कार्यकारी वर्ग में नीली पोशी कर्मचारी या हस्त कार्य करने वाले कर्मचारी आते हैं।

किसानों का एक महत्वपूर्ण वर्ग जिसमें पारम्परिक कृषि करने वाले किसान आते हैं। यह विकासशील देशों में पाए जाते हैं जैसे भारत। वर्ग स्तरीकरण की व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति का सामाजिक दर्जा उसकी निजी उपलब्धता पर आधारित होता हैं। व्यक्ति का वर्ग न्यून्तम तौर पर उपलब्धता पर आधारित होता हैं। तथा यह अन्य स्तरीकृत व्यवस्थाओं के समान जन्म पर आधारित नहीं होती।

वर्ग की विशेषताएँ

सामाजिक वर्ग की कुछ विशेषताए हैं

1. **प्रस्थिति समूहः** वर्ग एक दर्जा समूह हैं। समाज मे जब व्यक्ति विभिन्न चीजें विभिन्न कियाओ और विभिन्न व्यवसायो का अभ्यास करता हैं तो विभिन्न प्रस्थितियों का उदभव होता हैं।
2. **आर्थिक प्रकृति :** आथिक वर्ग विभिन्नताओं पर आधारित होता हैं उदाहरण के लिए, भौतिक संसाधनो के नियंत्रण और स्वामितव में असमानता पर आघारित होता हैं।
3. **अर्जित प्रस्थितिः** वर्ग प्रस्थिति एक अर्जित प्रस्थिति होती हैं। यद्यपि वर्ग जन्म से भी प्राप्त होता हैं, लेकिन जन्म ही इस प्रस्थिति का मुल्यांकन नहीं करता। यह व्यक्ति की उपलब्धियां होती हैं जोकि व्यक्ति की वर्ग प्रस्थिति को निश्चय करती हैं। वर्ग प्रस्थिति कभी भी बदली जा सकती हैं।
4. **अनुपम जीवनशैलीः** सामाजिक वर्ग अन्य वर्गों से उनके व्यवहारो के प्रकारो से भिन्न होता हैं। जोकि विशेष तौर पर वर्गो की जीवनशैली को दर्शाता हैं। इसके अंतर्गत पहनाव का तरीका, जीवन स्तर, मनोरंजक, सांस्कृतिक उत्पादक, परिवार के साथ संबंध आदि शामिल होते हैं। जीवन शैली वर्ग के मूल्यों, अधिमानों एवं अनुभवों को व्यक्त करता हैं।
5. **मुक्त समूहः** सामाजिक वर्ग मुक्त समूह होते हैं। ये मुक्त सामाजिक व्यवस्था का वर्णन करते हैं जिसमें उच्चतर सीधी सामाजिक गतिशीलता पाई जाती हैं।

कियाकलापः—10.3

1 क्या आप सोचते हो कि जिस समुदाय मे आप रहते हो वहाँ विभिन्न सामाजिक वर्ग पाए जाते है। वे कौन से हैं ?

2 उच्च वर्ग से संबंधिता के क्या लाभ हैं।

3 आप के अनुसार कौन लोग मध्यम वर्ग मे आते हैं।

4 क्या आपको उपभोक्ता संस्कृति का अर्थ पता है क्या आप इसे स्वीकारते हो ?

वर्ग पर सैद्धांतिक दृष्टिकोण : कार्ल मार्क्स तथा मैक्स वेबर

सामाजिक वर्ग के विकास पर विभिन्न विचार उपलब्ध हैं। इन विचारो का निर्देशन कुछ परिप्रेक्ष्यो द्वारा प्रसिद्ध सामाजिक विचारो द्वारा दिया गया हैं। वर्ग पर दो प्रमुख सिद्धांत कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर द्वारा दिए गए हैं।

बॉक्स 4

वर्ग पर कार्ल मार्क्स के विचार

मार्क्स के अनुसार वर्ग व्यक्तियों का समूह हैं जो उत्पादन के साधन एवं जीविका के साधन के आधार पर आपस मे जुड़े हुए होते हैं। मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार, वर्ग उन व्यक्तियो से मिल कर बनता हैं जो उत्पादन की प्रक्रिया मे समान भूमिका निभाते हैं। पूँजीवाद के अन्तर्गत दो मूल वर्ग पूँजीपति (शासक) वर्ग जो उत्पादन की सभी प्रक्रिया के मालिक होते हैं और जिनका नियंत्रण उत्पादन के सभी साघनो पर होता हैं तथा दूसरे मजदूर वर्ग जिनका उत्पादन की प्रक्रिया पर नियंत्रण नहीं होता, अपनी मजदूरी को वेतन के लिए बेच देते हैं। इस प्रकार, समाज मे विशेष तौर पर दो वर्ग पाए जाते हैं– एक, जिनका उत्पादन के साधनो पर अधिकार होता हैं वुर्जुआ दुसरा प्रोलिटरियट और मजदूर वर्ग कहलाता हैं।

मार्क्स के लिए इतिहास से लेकर अभी तक का समाज, वर्ग संघर्ष का इतिहास हैं। इस प्रकार, जब भी मानवीय समाज अस्तित्व मे आया, वह वर्गो मे बँटा पाया गया हैं जो अपने वर्ग रूचियो के लक्ष्य लिए आपस मे संघर्ष करते हैं। दासत्व समाज एवं सामंतवाद व्यवस्था में भी सर्घष समाज पाए जाते हैं। परन्तू पूँजीवादी समाज में सामाजिक वर्गो के विरोधो को सही तौर पर देखा जा सकता हैं। मॉक्स के अनुसार प्रत्येक समाज के अपने उत्पादन के तरीके होते हैं (तकनीक की प्रकृति एवं श्रम का विभाजन)। प्रत्येक उत्पादन का तरीका एक विशिष्ट वर्ग व्यवस्था को पैदा करता हैं जिसमें एक वर्ग उत्पादन की प्रक्रिया पर नियंत्रण करता हैं जबकि अन्य वर्ग उत्पादक की तरह क्रिया करते हैं और प्रभुत्व वर्ग को अपनी सेवा प्रदान करते हैं। फैक्ट्री दो वर्गो के बीच प्राथमिक शत्रुता का कारण बन जाती हैं– पूँजीपति या बुर्जुआ और मजदूर (सर्वहारा) या प्रोलिटेरिअट। यह दोनो वर्ग एक जिनके पास सब कुछ है और जिनके पास कुछ भी नहीं हैं, शासक एवं शोषित, श्रम शक्ति के खरीददार एवं विक्रेता, अत्याचारी वर्ग एवं सताए वर्ग, शक्तिशाली एवं शक्तिहीन वर्गो का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जब संघर्ष की दर काफी बढ़ जाती हैं तथा सर्वहारा (मजदूर) वर्ग सामाजिक चेतना को प्राप्त कर लेते हैं (आत्म जागरूकता एवं अपनी तर्कवादी रूचियों के लिए क्रिया करने की क्षमता आ जाती हैं), वे प्रभुत्व वाले पूँजीवादी वर्ग को चुनौती देते हैं जो अस्तित्व मे समाज के मालिक होते हैं। मार्क्स ने *''क्लास इन इट सैल्फ''* और *''क्लास फार इट सैल्फ''* मे अंतर बताया हैं। *''क्लास इन इट सैल्फ''* साधारणतः एक सामाजिक वर्ग हैं जिसके सदस्य उत्पादन की कृत्रिमता के समान संबंधो को सांझा करते हैं। मार्क्स का

मत हैं कि सामाजिक समूह तब ही पूर्ण रूप से वर्ग बनता हैं जब वह *'क्लास फार इट सैल्फ'* बनता हैं। जब इसके सदस्यो मे वर्ग चेतना एवं वर्ग एकता पाई जाती हैं। परिणामस्वरूप, विरोधी रूचियों और चेतनाओं वाले वर्ग, वर्ग संघर्ष की ओर अनुकरण करते हैं, जिसका परिणाम समाजवादी क्रांति है तथा वर्गहीन समाज की स्थापना हैं।

क्लास इन इट सैल्फ

क्लास फार इट सैल्फ

बॉक्स 5

वर्ग पर मैक्स वेबर के विचार

वेबर के अनुसार, सम्पति, शक्ति तथा प्रस्थिति असमानता के रूप बनाते हैं। वर्ग, आर्थिक पक्ष से संबंधित हैं, प्रस्थिति समुदाय के साथ तथा शक्ति राजनीति के साथ संबंधित होती हैं। मार्क्स की तरह, वेबर ने भी वर्ग को आर्थिक अवधारणा पर आधरित माना हैं। वेबर के अनुसार ये वे वर्ग होते हैं जो स्थिति को सांझा करते हैं।

वर्ग सम्पति की प्राप्ति के तथ्य पर आधारित हैं। वेबर ने निम्नलिखित के मध्य अंतर को बताया हैं। :

1 सम्पति एवं जायदाद के स्वामी के वर्ग, जो खानों, गाय– बैल, दास–प्रथा, सामान पूँजी, भण्डारो, पैसो, भूमि एवं जगीरों, इमारतों आदि के स्वामी होते हैं।

2 कर्मचारी वर्ग जिनकी मजदूरी पूँजीवादियों द्वारा शोषित होती हैं।

3 अधिग्रहण वर्ग जिनके पास सम्पति नहीं होती लेकिन विशेष कुशलता होती हैं जिसके आधार पर वे विभिन्न सेवाएं देते हैं।

4 व्यापारिक वर्ग में प्रतिष्ठित व्यक्ति आते हैं जैसे व्यापारी, साहूकार, व्यावसायिक औद्योगिक एवं कृषक, उद्यमी आदि जो समान वितीय संसाधनो का प्रयोग करते हैं।

वेबर अपनी पूंजीवादी एवं वर्ग संरचना के सिद्धांत पर कहते हैं कि सामाजिक स्तरीकरण का आधार शक्ति का असमान बंटवारा हैं। वर्गो का बंटवारा व्यक्तियों के बाजार के लिए उत्पादित समानो के संबंध में किया गया हैं। प्रस्थिति (दर्जा) समूह समान जीवन की शैली को दर्शाती हैं जो उनकी आय के आधार पर स्तरीकृत है। यह सब तत्व वर्ग स्थिति को स्पष्ट करते हैं।

वेबर का विश्वास हैं कि वर्ग, शक्ति पर विचार करते हुऐ, भौतिक संसाधनो की असमान रूप से होती है। अगर कोई किसी चीज पर अपना स्वामित्व दर्शाता हैं जिसकी उसको चाह हैं या जिसकी उसको जरूरत हैं तब यह उस व्यक्ति को और शक्तिशाली बनाता हैं। उदाहरण के लिए, प्रभुत्व स्थिति के कर्मचारी और अधीनस्थ स्थिति के कर्मचारियों के मध्य संबंध।

वर्ग व्यवस्था में नई प्रवृति

वर्ग अब एक साधारण अवधारणा नहीं हैं। आधुनिक समय में नए वर्गो का भी उद्‌भव हो रहा हैं। उदाहरण के तौर पर, भारत की कृषक व्यवस्था की दोबारा संरचना, भूमि सुधार एवं हरित क्रांति का परिणाम हैं। कृषि में नई तकनीक के आने से कृषि करने के उत्पादनों के तरीके में बदलाव आ गया हैं। पारम्परिक जमीदारी वर्ग के साथ, एक नये किसान वर्ग का उद्‌भव हो रहा था। जिनकी अपनी भिन्न–भिन्न कुशलता तथा अनुभव है। ये वे नागरिक तथा आर्मी से सेवानिवृत व्यक्ति थे जिन्होने अपनी बचत कृषि करने में लगा दी थी। पारम्परिक जमीनदारी उच्च वर्ग नहीं थे। इस नए वर्ग को 'सज्जन किसान' कहा जाने लगा।

पूंजीपति किसान जिनकी संख्या कम थी, वे भी किसान का एक वर्ग था। वे पूंजीपति तौर पर एवं व्यापारिक तौर पर नई तकनीक, उच्च स्तर के बीजों का प्रयोग करके, खेतीबाड़ी की सुविधयों की सही करके, उधार सुविधयों द्वारा और यातायात एवं संचार की सुविधाओं द्धारा किसान का प्रयोग करके शक्तिशाली बन गए थे। पूंजीपति किसानों का उद्‌भव कृषक सामाजिक संरचना में बदलाव को दर्शाते हैं जो सिर्फ सक्षमता एवं उत्पादकता में बढ़ावे मे ही मदद नहीं करती बल्कि औद्योगिक प्रगति एवं विकास में भी मदद करती हैं।

यद्यपि, भूमि के वास्तविक किसान, होने के बावजूद भी उन्हें पारम्परिक एवं पूंजीपति किसानो द्वारा अब तक मजदूरी प्राप्त करने वाले मजदूरो के रूप में रोजगार दिया जाता था। जो सिर्फ लाभ प्राप्ति की कियाओं द्वारा ही जुडे रहते थे। उच्च जाति के जमींदार (जमीन के मालिक) और अमीर बन गए जबकि छोटे किसान गरीब ही रह गए। इस प्रकार, भूमि सुधार के लाभ या नई तकनीक का लाभ एक समान पाया गया। यह मध्यम

जाति किसान थे। जिन्होने कृषक सुधार से काफी लाभ प्राप्त किया। मध्यम जाति के किसानो की आर्थिक समृद्धि के साथ उनकी राजनीतिक शक्ति या प्रभाव में बढ़ोतरी हुई। जैसे बिहार एवं उतर प्रदेश के यादव, और कर्नाटक के वोकालिगस।

उपभोक्तावाद की संस्कृति ने 'नए मध्यम वर्ग' को उज्जागर किया जोकि संभव्य बाजार की ओर केंद्रित हैं। ये वर्ग बहु राष्ट्रीय कम्पनियो को आकर्षित करती हैं। विज्ञापन, नगरीय मध्यम वर्ग के समृद्ध उपभोक्ताओं के उत्पन्न दृष्टिकोणो का वर्णन करता हैं। आंडबरहीनता की भावना एवं राज्य बचाव की निर्भरता जोकि पहले मध्यम वर्ग के मध्य पाई जाती थी। वह भावना अब नई मध्यम वर्ग में पाई जाती हैं। यह स्वाद, उपभोग एवं नई सांकृतिक स्तर के सामाजिक व्यवहारों का आलिंगन करता हैं। इसलिए, नए मध्यम वर्ग का उद्भव, भारत में आर्थिक उदारवादिता के युग में एक रूचिकर विकास हैं।

आधुनिक भारत में, वर्ग संरचना की महत्वपूर्ण विशेषता यह हैं कि सभी वर्ग इकट्ठे होकर एक राज्य शासन प्रणाली के अन्तर्गत मिलकर राष्ट्रीय आर्थिकता बनाना चाहते हैं। नया मध्यम वर्ग, अब गाँव के बेहतर विभागो से नए सदस्यो का चुनाव करने लगे हैं। गाँव के शिल्पकार या दस्तकार अब अलग नहीं हैं। मजदूरों के मध्य जाति विभाजन अभी भी प्रासंगिक हैं और और मुश्किल से मजदूरों के मध्य वर्ग चेतना की भावना पाई जाती हैं। हर कोई मध्यम वर्ग में अपना स्थान ढूंढ रहा हैं। जोकि और भी अधिक विविधता भरी होती जा रही हैं।

- सामाजिक असमानता समाज या समूह में विभिन्न समाजिक स्थितियों या प्रस्थितियों में अवसरों या पुरस्कारो का असमान अस्तित्व होता हैं।
- यह तब पाया जाता है जब समाज में संसाधनो का असमान बंटवारा पाया जाता हैं।
- जाति एवं वर्ग स्तरीकरण के दो मुख्य रूप हैं।
- पारम्परिक भारत में शुद्धता एवं प्रदुषण की अवधारणा के तौर पर जाति संरचना को परिभाषित किया जाता था।
- कुछ वर्षो से भारत मे जाति व्यवस्था में बदलाव आ रहा हैं।
- रूचिकर समुह के तौर पर जाति ने बल प्राप्त कर लिया हैं।
- वर्ग एक सामाजिक समुह हैं। जिसके सदस्य उत्पादन के साधनो के साथ समान संबंध सांझा करते हैं।
- आधुनिक वर्ग व्यवस्था खुली व अर्जित पर (प्राप्ति) आधारित होती हैं।
- बदलाव के साथ, समाज में नए समुहो एवं वर्गो का उद्भव हो रहा हैं।

शब्दावली

- **वर्ग:** यह आर्थिक समूह उत्पादन, आय स्तर, जीवन शैली एवं राजनीतिक के संबंध में सामान्य स्थिति पर आधारित होती हैं।
- **प्रभुत्व जाति:** यह मध्यम या उच्च मध्यम श्रेणी जाति हैं जिनकी जनसंख्या अधिक हैं और जिन्हे जमीन सम्पति के अधिकार प्राप्त हैं। इस मिश्रिता ने इन जातियों को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तौर पर देश में प्रभुत्व बना दिया हैं।
- **जाति:** जाति शब्द के लिए यह विशेषतः श्रेणीबद्ध जातियाँ हैं जो अपनी ही सीमाओ में विवाह करते हैं। वंशानुक्रम पर आधारित व्यवसाय को अपनाते हैं तथा यह जन्म पर आधारित होती हैं।
- **जीवन शैली:** यह रहन–सहन का तरिका या उपभोग के विशेष स्तर एवं प्रकार हैं जो विशेष सामाजिक समूहो की जीवन शैली को परिभाषित करता हैं।
- **स्तरीकरण:** समाज के विभिन्न खण्डो की स्तरो की उप समूहो में श्रेणीबद्ध व्यवस्था हैं जिनके सदस्य सामान्य स्थिति को सांझा करते हैं। यह असामान्यता को व्यक्त करता हैं।
- **छूआ–छूत:** यह जाति व्यवस्था के अंदर सामाजिक अभ्यास हैं। जिसके अन्तर्गत निम्न जाति के सदस्यो को अशुद्ध माना हैं तथा उन्हे कई सामाजिक संस्थाओ से बाहर निकाला गया हैं।
- **वर्ण:** जाति व्यवस्था समाज का चार वर्णो या जातियों में श्रेणीबद्ध पर आधारित विभाजन हैं जैसे ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र।

अभ्यास

प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 1–15 शब्दों के बीच दीजिए:

1. सामाजिक स्तरीकरण से आप क्या समझते हैं ?
2. सामाजिक स्तरीकरण के रूपों के नाम लिखो।
3. सामाजिक स्तरीकरण के तत्वों के नाम लिखो ।
4. जागीर व्यवस्था क्या हैं ?

5. शब्द जाति कहां से लिया गया हैं ?
6. वर्ण व्यवस्था क्या हैं ?
7. हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था की श्रेणीबद्धता स्थितियों के नाम लिखो।
8. छुआ–छूत से तुम क्या समझते हो ?
9. कुछ सुधारको के नाम लिखों जिन्होने छुआ–छूत के खिलाफ विरोध प्रकट किया।
10. वर्ग क्या हैं?
11. वर्ग व्यवस्था के किस्सो के नाम लिखो ?
12. मार्क्स ने कौन से का वर्णन किया है ?

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर 30–35 शब्दों में दीजिए:

1. सामाजिक असमानता क्या हैं?
2. सामाजिक स्तरीकरण के दो रूपों के नाम लिखों।
3. जाति व्यवस्था की दो विशेषताएं लिखों?
4. अन्तः समूह क्या हैं ?
5. प्रदूषण तथा शुद्धता से आप क्या समझते हो।
6. औद्योगीकरण तथा नगरीकरण पर संक्षिप्त रूप में लिखो ?
7. वर्ग व्यवस्था की दो विशेषताऍ लिखो?
8. नई मध्यम वर्ग पर संक्षिप्त रूप में लिखों ?

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 75–85 शब्दों में दीजिये:

1. सामाजिक स्तरीकरण की चार विशेषताएं लिखिए ?
2. किस प्रकार वर्ग समाजिक स्तरीकरण से संबंधित हैं।
3. जाति तथा वर्ग व्यवस्था के बीच अन्तर बताईए ?
4. जाति व्यवस्था में परिवर्तन के चार कारक लिखों ?

5. सामाजिक स्तरीकरण के प्रमुख रूपों के रुप में जाति और वर्ग के बीच अन्तर बताइए ?

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 250–300 शब्दों में दीजिएः

1. स्तरीकरण को परिभाषित करो ? सामाजिक स्तरीकरण की क्या विशेषताएं हैं ?
2. सामाजिक स्तरीकरण के रूपों के बारे में विस्तृत रूप में विचार विमर्श करो ?
3. जाति व्यवस्था मे परिवर्तन के कौन से कारक हैं ?
4. वर्ग व्यवस्था को परिभाषित कीजिए। इनकी विशेषताओं को लिखों ?
5. भारत में कौन सी नई वर्गो का उद्भव हुआ हैं?
6. भारत में वर्ग व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ बताओं।
7. मार्क्सवादी तथा बेबर का वर्ग परिप्रेक्ष्य क्या हैं ?

अध्याय 11

सामाजिक परिवर्तन

प्रमुख बिंदुः

11.1 अर्थ
11.2 विशेषताएं
11.3 स्वरूप
11.4 कारक

परिचय

परिवर्तन एक विस्तृत अवधारणा हैं। यद्यपि परिवर्तन हमारे चारों तरफ पाया जाता हैं, लेकिन हम इन सभी परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन नहीं कह सकते। इसी प्रकार साल दर साल प्रकृतक विकास या मौसम परिवर्तन की अवधारणा सामाजिक परिवर्तन के अन्र्तगत नहीं आती। समाजशास्त्र में हम सामाजिक परिवर्तन को सामाजिक सरंचना और सामाजिक संबंधों में आए परिवर्तन के रूप में देखते हैं।

अर्थ और परिभाषा

सामाजिक परिवर्तन का अर्थ, व्यक्ति के कार्य करने तथा सोचने के तरीके में बदलाव से हैं। यह परिवर्तन व्यक्ति के जीवन प्रारूप मे बदलाव से हैं। सरंचना में परिवर्तन और सामाजिक रूपों के कार्यात्मकता में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन के अन्र्तगत ही आते हैं। यह सभी सामाजिक सगंठन में बदलाव को दर्शाते हैं। यह सामाजिक संबंधों में बदलाव हैं, जिसमें सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रारूपों और सामाजिक अंतर्क्रियाओं में बदलाव या परिवर्तन आते हैं। प्रतिमानों, मूल्यों, सांस्कृतिक उत्पादों तथा चिन्हों में बदलाव आता रहता है। समाज के अन्य पक्षों में बदलाव सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के परिणमस्वरूप समयानुसार पाया जाता है। समाज तीव्रता या धीमी गति से बदलता रहता हैं, लेकिन समाज में परिवर्तन अपरिहार्य या निरन्तर होने वाली प्रक्रिया होती हैं। जैसा कि हमें पता हैं कि समाज की सामाजिक संरचना होती हैं, जोकि सामाजिक संबंधो के

जाल को बुनती हैं। इसी प्रकार, सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समाज की सामाजिक संरचना तथा सामाजिक संबंधों में परिवर्तन से हैं। अन्य शब्दों में, यह वह प्रक्रिया हैं, जिसमें सामाजिक संस्थाओं, प्रस्थितियों, भूमिकाओं, प्रतिमानों, मूल्यों, साभाओं, संगठनों आदि में समय–समय पर आए परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

बॉक्सः–1

कुछ परिभाषाएँ

सामाजिक परिवर्तन से अभिप्राय पारस्परिक अन्तः मानवीय संबंधों एवं व्यवहारिक आचरण के मान्य प्रारूपों में बदलाव से हैं। **(जार्ज ए. लुण्डबर्ग)**

सामाजिक परिवर्तन का अर्थ केवल उन परिवर्तनों से हैं जो सामाजिक संगटन या समाज के कार्य और संरचना में होते हैं। **(किंग्सले डेविस)**

सामाजिक परिवर्तन जीवन के मान्य व्यवहारों में परिवर्तन से हैं। **(जॉन एल.गिलिन और जॉज पी.गिलिन)**

लेकिन मात्रः सामाजिक परिवर्तन सामाजिक संरचना या सस्कृतिक विशेषताओं या दोनों में लम्बे समय तक आए बदलाव से होता हैं। इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते है कि परिवर्तन समाज के इन तीन पक्षों पर प्रभाव डालती हैं।

1 समूह के व्यवहार
2 सामाजिक संरचना
3 सांस्कृतिक विशेषताएँ

किसी भी प्रकार के परिवर्तन की प्रक्रिया इन तीनों पक्षों में परिवर्तन लाती है।

सामाजिक परिवर्तन एक विस्तृत प्रक्रिया हैं। समाज के किसी भी पक्ष में परिवर्तन जैसे–आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नीतिशास्त्र, भौतिक, सामाजिक आदि में परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कह सकते हैं। यह परिवर्तन या बदलाव स्वयम प्राकृतिक तौर पर भी हो सकता हैं या मानवीय समाज द्वारा योजनाओ पर आधारित भी हो सकता हैं।

सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ

सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:—

1 **सामाजिक परिवर्तन एक सर्वभौमिक घटना हैं**: परिवर्तन सभी समाजों में पाया जाता हैं। कोई भी समाज स्थिर नहीं होता हैं। सभी समाजों में इस परिवर्तन की सत्यता पाई जाती हैं, चाहें वह प्राचीन हो या सभ्य हो। परिवर्तन की गति और प्रकृति सभी समाजों में अलग अलग पाई जाती हैं, लेकिन कोई भी समाज इस घटना से नहीं बचा हैं।

2 **विभिन्न समाजों में परिवर्तन की गति भिन्न होती हैं**: यद्यपि सामाजिक परिवर्तन सभी समाजों में पाया जाता हैं, लेकिन सभी जगह इसकी गति एक समान नहीं होती हैं। उदाहरण के लिए, भारत में सामाजिक परिवर्तन बड़ी धीमी गति से होता हैं। यह तब होता हैं, जब अविष्कार या विकास की योजना घीमी हो। लेकिन इनकी प्रस्तावना के साथ, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में कई विकासशील योजना ने तीव्रता पाई है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरीय क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन में तीव्रता पाई जाती हैं। यद्यपि सामाजिक परिवर्तन तीव्रता या धीमी गति के रूप में पाया जाता हैं।

3 **सामाजिक परिवर्तन सामुदायिक परिवर्तन होता है**: यह वह परिवर्तन होता हैं जो कि सम्पूर्ण समुदाय में पाया जाता हैं न कि व्यक्तिगत स्तर या समूह स्तर पर। सामाजिक परिवर्तन का अर्थ किसी व्यक्ति के जीवन या कई व्यक्तियों की जीवन शैली में आए परिवर्तन से नहीं है। यह वह परिवर्तन हैं जो सम्पूर्ण समुदाय में पाया जाता हैं। सामाजिक परिवर्तन सामाजिक हैं न कि व्यक्तिगत।

4 **सामाजिक परिवर्तन स्पष्ट रूप से भविष्यवाणी नहीं कर सकता**: हालांकि सामाजिक परिवर्तन अपरिहार्य होता हैं। सामाजिक परिवर्तन के रूपों की भविष्यवाणी करना मुश्किल होता है इन समस्याओं का उदय इस लिए होता हैं क्योंकि यहां पर कुछ अमान्य तत्व भी पाए जाते हैं, जोकि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सहयोग देते हैं। उदाहरण के लिए, हम कह सकते हैं कि सामाजिक सुधार आंदोलन ने भारतीय समाज से अछूतता को खत्म कर दिया और सरकार द्वारा विवाहित कानून को पास करने से विवाह की विचारधारा या आधारों में परिवर्तन आया। ओद्यौगिकीकरण से, नगरीकरण की गति तीव्र हो गई। लेकिन हम यह भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि कौन सा सामाजिक संबंध

भविष्य में होगा। वैसे ही, सामाजिक संबंधों, व्यवहारों, विचारों, प्रतिमानों और मूल्य में परिवर्तन की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

5 **समय की अवधारणा सामाजिक परिवर्तन के साथ जुड़ी होती है:** जब हम सामाजिक परिवर्तन की बात करते हैं तो हम समाज को दो विभिन्न समयों के अनुसार देखते हैं तथा उन समाजो की आपस में तुलना परिवर्तन के बारे में निष्कर्ष निकालने से पहले करते है, आधुनिक समयों में सामाजिक परिवर्तन की गति तीव्र हैं, यद्यपि पहले समय में इसकी गति इतनी तीव्र नहीं थी। इसका कारण वे कारक हैं जिनकी वजह से सामाजिक परिवर्तन होता हैं। अतः उनमें एक समानता नहीं पाई जाती। उदाहरण के लिए, आजादी से पहले कम औद्योगिक भारत में, सामाजिक परिवर्तन की गति धीमी थी। 1947 के बाद, जब भारत में औद्योगिकीकरण हो गया तब इसकी गति तीव्र हो गई।

6 **सामाजिक परिवर्तन श्रृखलां प्रतिक्रिया को उत्पन्न करती है:** सामाजिक परिवर्तन श्रृखंला प्रतिक्रिया की कमबद्वता को दर्शाता हैं। जीवन के एक पक्ष में परिवर्तन अन्य पक्षों में परिवर्तन का नेतृत्व करता हैं। उदाहरणानुसार, औद्योगीकरण ने घरेलू उत्पादन की व्यवस्था को खत्म कर दिया जिसका परिणाम औरते घर से निकलकर फैक्टरी से तथा ऑफिस में कार्य करने लगी। औरतों के रोजगार का परिणाम उनकी पुरूषों की गुलामी से आजाद हुई। इस स्वंतत्रता से उनके आत्म–विश्वास, अभिक्रियाओं तथा विचारों में परिवर्तन आया। जिसका प्रभाव उनके पारिवारिक जीवन पर भी पड़ा। इस प्रकार, हम देख सकते हैं कि कैसे नगरीय तथा ग्रामीण समाजों का घरेलू जीवन, पारिवारिक संबंध, पारिवारिक संरचना, आर्थिक और कुछ हद तक राजनीतिक प्रारूपों पर प्रभाव पड़ता हैं।

7 **सामाजिक परिवर्तन विभिन्न कारकों की अंतक्रियाओं का परिणाम है:** सामाजिक परिवर्तन किसी एक कारक के कारण नहीं होता, बल्कि यह कई कारकों का परिणाम होता हैं। यह परिवर्तन विभिन्न पक्षों जैसे–तकनीकी, शिक्षा, आर्थिक विकास आदि में परिवर्तन के परिणामस्वरूप पाया जाता है। एक कारक परिवर्तन का कारण हो सकती हैं, लेकिन यह स्वयं कई कारकों से जुड़ा होता हैं, जोकि मिलकर परिवर्तन लाते हैं। अतः सामाजिक घटना आपसी अंतःनिर्भरता पर आधारित होती है और उनमें से कोई भी अलगाव किया के रूप में कार्य नहीं करता, जिसके परिणामस्वरूप परिवर्तन आता हैं। सम्पूर्णतया, एक भाग में बदलाव अन्य भागों को प्रभावित करता है और ये सब अन्य भागों को भी प्रभावित करती हैं, यह तब तक होता रहता है, जब तक इसके अंतर्गत सभी भाग शामिल न हो जाए।

8 **सामाजिक परिवर्तन नियोजित या अनियोजित हो सकते हैः** सामाजिक परिवर्तन या तो प्राकृतिक तौर पर या फिर नियोजित कोशिशों का परिणाम होती हैं। सामाजिक परिवर्तन की दर या दिशा मानवीय कोशिशों द्वारा निर्धारित की जाती हैं। नियोजन, कार्यक्रम और परियोजना मानवों द्वारा निर्धारित किए गए थे। यह सामाजिक परिवर्तन की दिशा और दर को भी नियंत्रित करती है। अनियोजन परिवर्तन का अर्थ प्राकृतिक विपति के परिणाम से हुए परिवर्तन से हैं, जैसे–बाढ़, भुखमरी, भूकंप आदि।

सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन एक दूसरे के साथ एक दिशा की ओर अग्रसर करते हैं। कुछ व्यक्ति सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों समरुप मानते हैं और महसूस करते हैं कि प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन का सांस्कृतिक परिवर्तन अनुसरण करता हैं और इसी प्रकार संस्कृतिक परिवर्तन भी सामाजिक परिवर्तन का अनुसरण करता हैं। लेकिन ऐसा नहीं हैं क्योंकि शाब्दिक पक्ष से यह पाया जाता हैं कि संस्कृति समाज से भी विस्तृत होती हैं। संस्कृतिक परिवर्तन धर्म, ज्ञान, विश्वास, रीतिरिवाज, प्रथाओं, विज्ञान, दार्शनिकता, साहित्य, कला इत्यादि में परिवर्तन को शामिल करता हैं। दूसरी तरफ, सामाजिक परिवर्तन सामाजिक सगंठन और सामाजिक संबंधों में परिवर्तन से होता हैं। सामाजिक परिवर्तन को संस्कृतिक परिवर्तन का ही भाग मान सकते हैं।

सामाजिक और संस्कृतिक परिवर्तन में अंतर इस प्रकार हैंः—

1 सामाजिक परिवर्तन वह परिवर्तन हैं जो सिर्फ सामाजिक संबंधों में पाया जाता हैं। जबकि संस्कृतिक परिवर्तन धार्मिक, ज्ञान, विश्वास, रीतिरिवाज, प्रथा, विज्ञान, दार्शनिकता, साहित्य, कला, कानून आदि क्षेत्रों में पाया जाता हैं।
2 सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक संरचना में पाया जाता हैं, जबकि संस्कृति परिवर्तन संस्कृति के विभिन्न पक्षों में पाया जाता हैं।
3 सामाजिक परिवर्तन चेतनात्मक या अचेतनात्मकता के रूप मे पाया जाता हैं, जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन चेतनात्मक कोशिशों द्वारा पाया जाता हैं।
4 सामाजिक परिवर्तन की गति की दर तीव्र हो सकती हैं, जबकि संस्कृतिक परिवर्तन की गति की दर धीमी होती हैं। इसका अर्थ, संबंधों में तीव्र परिवर्तन हो सकता हैं, लेकिन धर्म, विश्वास और मूल्यों में परिवर्तन की गति काफी धीमी होती हैं।

इस प्रकार, यह निश्चित हैं कि सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन दोनों भिन्न होते हैं। तथापि इनके मध्य काफी नजदीकी संबंध पाए जाते हैं और प्रत्येक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अभ्यास में इन भेदों का प्रयोग तथा संभाल कभी—कभी की जाती हैं। सामाजिक—सांस्कृतिक परिवर्तन का प्रयोग दोनो प्रकारों में परिवर्तन को शामिल करता हैं।

सामाजिक परिवर्तन के तीन मूल स्त्रोत

विलियम एफ. ऑगबर्न के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन इन निम्नलिखित तीन तरीकों के इलावा एक या अधिक तरीकों में पाए जाते है जो निम्नलिखित हैंः—

- नवीनीकरण
- खोज
- प्रसार

नवीनीकरण (नई खोज)

नवीनीकरण का अर्थ पहले से मौजूद किसी तत्व द्वारा नई चीज़ का निर्माण करना। इसका सामान्यतः अर्थ पहले से अस्तित्व में ज्ञान का नये रूप से समायोजन या प्रयोग करना होता हैं उदाहरणार्थ पहले से अस्तित्व विचारो द्वारा मोटरवाहन के पुर्जो को जोडना। नवीनीकरण भौतिक (यातायात) और सामाजिक (मजदूर संग) हो सकते हैं। अविष्कार रूप में (जैसे आकार या क्रिया में), कार्य में(यह क्या करता है), अर्थ में (इसके काफी लम्बें परिणामों से), या सिद्वातों में (सिद्वातं व कानून जिस पर ये आधारित हैं) नए अविष्कार हो सकते हैं। अविष्कार सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाता हैं।

खोज

खोज के अंतर्गत पहली बार किसी क्रिया को ढूढ़ना या सीखाना आता हैं। उदाहरण के लिए, वैज्ञानिक, पौधें की नई जाति की खोज करते हैं या नई कुशलता का खोज करते या नदी में प्रदूषण की खोज करते हैं। इसमें उन तत्वों की खोज की जाती है जोकि पहले से विश्व में अस्तित्व में होते है, लेकिन जिनका हमें पता नहीं होता हैं। खोज, सस्कृति में किसी नई चीज़ को जोड़ती हैं, क्योंकि यह पहले से ही अस्तित्व में होती हैं। लेकिन खोज के पश्चात् ही यह संस्कृति का भाग बन जाती हैं। तथापि सामाजिक परिवर्तन में यह तब ही कारक बनती है जब इसे प्रयोग करते है तब नहीं जब केवल इसका पता हो। सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियां खोज के लिए या तो प्रोत्साहित करती है या अप्रोत्साहित करती हैं।

प्रसार

प्रसार का अर्थ किसी चीज़ का विस्तृत रूप से फैलाव होता हैं। उदाहरण के लिए, सांस्कृतिक विचारों का एक समूह से दूसरे में फैलाव होना यह प्रसार का उदाहरण हैं। सभी समाजों में ज्यादातर सामाजिक परिवर्तन प्रसार के द्वारा ही विकसित होता हैं। यह समाजों के बीच और इसके अंतर्गत प्रचलित होता है। जब कभी समाज एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं तब यह प्रक्रिया पाई जाती हैं। यह दोहरी प्रक्रिया होती हैं। प्रसार में सामान्यतः संस्कृति में लिए गए तत्वों में बदलाव किया जाता हैं, जिसके अंतगर्त उनके रूप, कार्य या अर्थ में परिवर्तन आता हैं। उदाहरणार्थ, ब्रिटिश ने अपनी भाषा दी थी। हालांकि भारतीय अग्रेंजी की किस्म, मूल स्थानीय अग्रेंजी की किस्म के शब्दों के चुनाव या अर्थ से भिन्न होती है। इसके अंतर्गत प्रसार एक विशिष्ट प्रक्रिया हैं। जैसा कि हम जानते हैं, भारतीयों ने अग्रेंजी प्रथा के चाय पीने के तरीके को अपनाया लेकिन उन्होनें अग्रेंजों की तरह गोमांस खाने के व्यवहार को नहीं अपनाया था। इस प्रकार प्रसार का अर्थ यह जानना होता हैं कि कैसे, क्यों और कितनी दर तक संस्कृति द्वारा नयें विचारों और तकनीकीयो का फैलाव हुआ हैं।

नवीनीकरण

खोज

प्रसार

परिवर्तन का अंतःसामुहिक और बर्हिय सामुहिक उद्‌भव

समाज में परिवर्तन लाने के लिए कुछ स्त्रोत तथा स्थितियाँ होती हैं। ये स्त्रोत तथा स्थितियाँ समाज की आंतरिक संरचना में पाए जाती हैं या इन्हें बर्हिय कारणों द्ववारा भी स्पष्ट किया जा सकता हैं।

प्रभावो, स्त्रोतो और स्थितियों को दो भागों में बाँटा जा सकता हैं।

1) अन्तःसामुहिक (आंतरिक कारण)

2) बर्हिसामुहिक (बाह्‌य कारण)

अन्तःसामुहिक परिवर्तन से अर्थ उन परिवर्तन से है जो समाज में उत्पन्न होते हैं। बर्हिय सामुहिक परिवर्तन वह परिवर्तित होते होता हैं जो बाह्‌य कारकों के कारण उत्पन्न होते हैं। यह निर्धारित करना मुश्किल होता हैं कि कब और कैसे परिवर्तन उत्पन्न होता हैं। यह कहा जा सकता हैं कि युद्व तथा जीत (अंतःसामुहिक उद्‌भव) विश्व में समाजों के अंतर्गत सामाजिक परिवर्तन को क्रियाशील करने पर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। यह भी कहा जा सकता हैं कि आधुनिक विश्व में जो विकासशील देशों में परिवर्तन आ रहे हैं वह पश्चिमी तकनीकी की प्रकृति द्ववारा विस्तृत तौर पर पाए जाते हैं। जिसका उद्‌भव उपनिवेश शासन के पश्चात शुरू हुआ। सामाजिक परिवर्तन काफी मात्रा में समाज में सामाजिक समूहों की क्रियाओं पर आश्रित या निर्भर होता हैं। समाजशास्त्र के शिष्यक के तौर पर हमारा कार्य उन जगहो या समूहों को पहचानना हैं जहां पर परिवर्तन का काफी प्रभाव पड़ा हैं और वो तरीको का अविष्कार करना जिनसे एक जगह से दूसरी जगह पर प्रसार हुआ हैं।

क्रियाकलापः—11.1

उन परिवर्तनो पर चर्चा करो जिन्हे आपने अपने समाज में समय समय पर देखा हैं।

सामाजिक परिवर्तन के रूप

सामाजिक परिवर्तन कई रूपों में पाया जाता हैं। कुछ समान्य रूपों में सेः **उद्‌भव, विकास, प्रगति और क्रांति** के रूप में भी पाये जाते हैं। कई बार यह अवधारणाओं को समानार्थक तौर पर प्रयोग किया जाता हैं। यद्यपि, समाजशास्त्र तौर पर ये सब एक दूसरे से भिन्न होते हैं और भिन्न—भिन्न विशेषताओं को दर्शाते हैं।

उद्भवः उद्भव का शाब्दिक अर्थ क्रमिक तौर पर अनदरूनी परिवर्तन से बाह्य परिवर्तन तक होता हैं, जोकि अपने अनुरूप परिवर्तित होता हैं।यह स्वैच्छिक परिवर्तन होता है जो आत्म सहमति द्ववारा अपना स्थान लेता है। उद्भव शब्द का प्रयोग ज्यादातर अवयव में आन्तरिक वृद्धि से लगाया जाता हैं। समाजशास्त्र में, इस अवधारणा का प्रयोग जीवविज्ञान अध्ययनों से प्रभावित होकर किया गया। जबकि, जैविक उद्भव अवयव के उद्भव को दर्शाने के लिए किया गया हैं सामाजिक उद्भव का प्रयोग मानवीय समाज के उद्भव के लिए किया गया। सामाजिक उद्भव के अंतर्गत सामाजिक संस्थाओं में क्रमिक और धीरे–धीरे से परिवर्तन आता हैं। जिसमें सरल से जटिल रूप तक विकास होता जाता हैं। कई विचारको की सोच इस उद्भवीय सिद्वान्तों द्ववारा प्रभावित हुई हैं। प्राकृतिक इतिहासकार चार्ल्स डार्विन के अनुसार, उद्भव की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप ही जानवर प्राणी के रूप में अस्तित्व में आए। हरबर्ट स्पेंसर ने सामाजिक उद्भव की अवधारणा की क्रमबद्विता में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। उनका विश्वास है कि समाज भी इसी प्रकार क्रमिक रूप से विकसित होता हैं। अन्य विचारको जैसे अगस्त कॉम्ट, कार्ल मॉक्स और इमाइल दूर्खीम का कार्य भी उद्भवीय सिद्वान्त द्ववारा प्रभावित हुआ।

सामाजिक उद्भव की निम्नलिखित विशेषताएँ हैंः–

1 समाज ऊपर की तरफ सीधी रेखा में निचले स्तर से उच्च्य स्तर तक बढ़ता हैं।
2 निचले स्तर पर सामाजिक संरचना सरल तथा समरूप होती है। जैसे समाज ऊपर की तरफ बढ़ता जाता है। सामाजिक संरचना जटिल तथा भिन्न होती जाती हैं।
3 स्पेंसर के अनुसार जीवविज्ञान उद्भव का सिद्वान्त सभी प्रकार के उद्भवों पर लागू होता हैं।
4 जनसंख्या में वृद्वि और सामाजिक विभिन्नता ये दो विशेष कारक हैं जिससे समाज निचले स्तर से उच्च्य स्तर की तरफ बढ़ता जाता हैं।

विकासः– विकास भी सामाजिक परिवर्तन का एक अन्य पक्ष होता हैं। वर्तमानकालीन समाजशास्त्रीय लेखन में प्रगति शब्द का प्रयोग औद्योगीकरण और सभी समाजों में आधुनिक तकनीकी की प्रभुत्वता के लिए किया जाता हैं। विश्व विकासशील तथा विकसित समाजों में बंटा हुआ हैं। पहली श्रेणी में औद्योगीक विकसित राष्ट्र आते हैं। विकासशील राष्ट्रों का अर्थ वे राष्ट्र हैं जो औद्योगीकी तौर पर पिछड़े हुए होते हैं और जिनकी सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था कृषि की अवधारणा और ग्रामीण समुदायों पर आधारित होती हैं। इस दृष्टिकोण से एल. टी. हाबॅहाऊस ने सामाजिक विकास की अवधारणा का प्रयोग उद्भव की जगह पर किया। उनके अनुसार विकास के माप के चार

तरीके होते हैं। ये तरीकें मात्रा, कुशलता, आपसीपन और अत्मनिर्भरता होते हैं। इन स्थितियों में वृद्वि विकास को दर्शाती हैं। विकास की अवधारणा को कॉम्ट और स्पेंसर के कार्यों में देखा जा सकता हैं। यद्यपि, उनके लेख में विकास और प्रगति में आपसी मिलाप पाया जाता हैं।

प्रगतिः– प्रगति भी परिवर्तन का एक रूप होती हैं। इसका अर्थ लक्ष्य की तरफ बढ़ना होता हैं। प्रगति लक्ष्य की तरफ बढ़ने की एक अलग कोशिश होती हैं, जो निश्चित होते है जिसे सामाजिक मूल्यों द्ववारा समर्थन प्राप्त होता हैं। इसीलिए इसका अर्थ, समाज में धीरे–धीरे सुधार लाना या सम्यता की ओर बढ़ना होता हैं। स्पेंसर तथा हाबॅहाऊस ये पहले विचार हैं जिन्होनें प्रगति के बारे में अपने विचार व्यक्त किये थे। प्रगति या तो धीरे–धीरे होती हैं या तीव्र गति से होती हैं। सामाजिक परिवर्तन किसी भी उद्‌भव प्रगति के साथ जुड़ा होता हैं या जुड़ा हुआ नहीं होता था। प्रगति के कारणो तथा सिद्वान्तों की व्याख्या करते हुए स्पेंसर का मत था कि जब भी हम प्रगति के सिद्वान्त धरती, जीवन, समाज, सरकार, व्यापार, भाषा, संस्कृति और विज्ञान पर विचार करेगें तो यह पाऐंगे कि सभी चीजें सरलता से जटिलता, कम से ज्यादा विभेदीकरण, एकरूपता से भिन्नता के रूप की तरफ बढ़ती जाती हैं। यद्यपि, व्यक्ति को स्मरज रखना चाहिए कि प्रगति की अवधारणा विकास के समान नहीं होती हैं। हाबहाऊस का विश्वास हैं कि आर्थिक विकास तथा क्षमता के बीच में नैतिक पदावन्नति संभव होती हैं। परमाणु विषयक की खोज विकास को दर्शाती हैं। लेकिन इसके साथ ही मानवीय विनाश का भय भी जुड़ा हुआ होता हैं जोकि नैतिक विनाशकारीता को भी दर्शाता हैं।

उद्‌भव विकास तथा प्रगति में तुलना

सामाजिक उद्‌भव की अवधारणा जैविकीय होती हैं। यह माना जाता हैं कि जानवरों में क्रमिक रूप से विकास होता हैं और इसी प्रकार समाज भी सरलता से जटिलता या कम विभेदीकरणीय से अधिक विभेदीकरण तक और राजनीयता से विषमरूपता वाले स्तर तक बढ़ता जाता हैं। विकास की अवधारणा का उद्‌भव सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी तत्वों द्वारा हुआ हैं। शिक्षा का प्रसार स्वास्थ्य में सुधार, आर्थिक उत्पादन में वृद्वि और तकनीकी में सुधार विकास को दर्शाते हैं। विकास में उद्‌भाविन तत्वो का भी क्रमिक तौर पर विकास होता हैं। प्रगति की अवधारणा नैतिक होती हैं। उद्‌भव और विकास के अलावा समाज में नैतिक विनाशकारीता भी पाई जाती हैं। प्रगति में व्यवहारों की औचित्यता और वांछनीयता के दृष्टिकोण से विकास को समझा जाता हैं। तलाक की दर में कमी की जगह बढ़ोतरी और मानवता में वैज्ञानिक विकास की जगह विनाशकारीता की बढ़ोतरी का भय ये कुछ ऐसे विषय हैं, जो विकास एवं प्रगति के मध्य विभिन्नता को दर्शाते हैं।

क्रांतिः—क्रांति भी सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण रूप होती हैं। यह परिवर्तन शीघ्रता और अचानक से आता हैं। इसमें एक निश्चित दिशा में समाज की संरचना में पूर्णरूप से परिवर्तन आता हैं। इसमे समाज के राजनीतिक, आर्थिक और स्तरीकरण व्यवस्था में मूल रूप सें तीव्रता से परिवर्तन से आता हैं। क्रान्ति, वर्गो और राजनीतिक समूहों के मध्य संघर्ष द्ववारा आता हैं जोकि हिंसक भी हो सकती हैं। इनके मध्य संघर्ष सामाजिक परिवर्तन की ओर ले जाता हैं। क्रान्ति राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संस्थाओं में मूल परिवर्तन को खोजती हैं। मार्क्स के लिए क्रान्ति नए उत्पादन के साधनों की पहचान द्ववारा समाज की संरचना में परिवर्तन लाती हैं। नए उत्पादन के साधन साधारणता समाज की राजनीतिक, सामाजिक और अन्य संस्थाओं में धीरे—धीरे परिवर्तन लाते है।

अतः क्रान्ति बहुत तीव्र गति से सामाजिक परिवर्तन लाती हैं। मानवीय समाज का इतिहास पूरा क्रान्तियों से भरा हुआ हैं। यह परिवर्तन चाहे किसी भी प्रकार का हो सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक या तकनीकी, यह अस्तित्व में समाज में बहुत परिवर्तन लाते हैं। परिवर्तन नए सामाजिक संबंधों, नई संस्कृति, नई राजनीतिक व्यवस्था या नई तकनीकी में परिवर्तन लाते हैं। इसी प्रकार, क्रान्ति सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण तौर पर परिवर्तन लाती हैं।

इस प्रकार कह सकते हैं कि सामाजिक परिवर्तन एक विस्तृत अवधारणा होती हैं। कई बार उद्भव, विकास और प्रगति की अवधारणा के बारे में गलत धारणा पाई जाती हैं। इन तीनों के मध्य अंतर साफ नहीं होता हैं। इसीलिए इन अवधारणों में निश्चित सामान्य और वैज्ञानिक रूप से सही अर्थ नहीं होता हैं। यद्यपि, समाजिक परिवर्तन की अवधारण में निश्चिता, सामान्यता और वैज्ञानिकता पाई जाती है। परिवर्तन एक उद्देश्य पूर्ण अवधारणा होती हैं। इसमें निष्पक्ष उद्देश्य पाए जाते हैं, जोकि वैज्ञानिक अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

सामाजिक परिवर्तन की दर और दिशा को प्रभावित करते तत्व

सामाजिक परिवर्तन कई तत्वों की वजह से पाया जाता हैं। कई तत्व समाज के आंतरिक होते हैं, जबकि कई तत्व बाह्य होते हैं। सामाजिक परिवर्तन के सिद्वान्त लोगों के द्ववारा सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाने की भूमिका पर विशेष बल देते हैं। सिद्वान्तकारी जैसे विलबर्ट मूरे का सुझाव हैं कि व्यक्ति हमेशा अपनी समस्यों का हल ढूढ़नें की कोशिश करता हैं और ये हल सामाजिक परिवर्तन को पैदा करते हैं। उनके लिए सामाजिक परिवर्तन का व्यक्तियों की भूमिका में बहुत महत्व होता हैं। उदाहरण के लिए, रूस में वालदीमीर लेनिन की भूमिका और इसी प्रकार, भारत में महात्मा गाँधी की भूमिका का

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में बहुत महत्व हैं। कुछ अन्य सिद्वान्त भी हैं निर्धारणात्मक जो समाज में परिवर्तन के प्रभाव पर बल देते हैं, जाकि मानवीय नियन्त्रण से परे होते हैं। उदाहरण के लिए, कार्ल माक्स मानते हैं कि तकनीकी परिवर्तन मानवीय नियन्त्रण से बाहर होता हैं। इन में से कुछ शक्यिॉं, तकनीकी में प्राकृतिक विपत्तियों वाली तथा अकल्पित विकास वाली होती है। कुछ अन्य सिद्धान्तकारों ने परिवर्तन की दोनो व्याख्याओं को आपस में जोड़ा। लेकिन उनका यह भी मत हैं कि सामाजिक वर्गो को अपनी रूचियों के लिए जागरूक हो जाना चाहिए और तब वे क्रान्तिकारी किया के लिए आपस में जुड़ जाऐगें और ये क्रान्तिकारी कियाएँ सामाजिक परिवर्तन को पैदा करेगी।

जैसे कि पहले ही दर्शाया गया हैं, समाजशास्त्री अपना ध्यान उन विशेष सामाजिक तत्वों की ओर केन्द्रित करते हैं, जो सामाजिक परिवर्तन के स्त्रोतों को दर्शाते हैं। इन्हें निम्नलिखित तौर पर वर्गीकृत किया गया हैः—

1 पर्यावरणीय कारक
2 मूल्य और विश्वास
3 महान पुरूष
4 जैविकाय या जनसंख्याकिय कारण
5 तकनीकीय कारक
6 शिक्षा

पर्यावरणीय कारक

पर्यावरणीय कारक अवयव और उनके पर्यावरण के मध्य संबंधों को बताता हैं। इसलिये सामाजिक परिवर्तन के पर्यावरणीय कारक वे होते हैं, जो जीवित अवयव और उनके पर्यावरण के मध्य अंतसंबंध की विशेषता को दर्शाते हैं। ये कारक अचानक परिवर्तन या सामाजिक परिवर्तन की दर को दिखाते हैं। मौसम स्थितियों, प्राकृतिक संसाधन, देश की प्राकृतिक प्रस्थिति, प्राकृतिक विपति भी सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण स्त्रोत होते हैं। प्राकृतिक संकट जैसे—बाढ़ संपूर्ण जनसंख्या को खत्म कर सकती हैं, यह व्यक्तियों को प्रवास के लिए मजबूर कर सकती हैं या अपने समुदाय को पूर्ण रूप से दूबारा बनाने के लिए मजबूर कर सकती हैं। सामान्यतः मानवीय जनसंख्या के आकार में जन्मदर, मृत्युदर या प्रवास द्ववारा बढ़ोतरी या घटावपन आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं के लिए विशेष चुनौती पैदा कर सकती हैं। आज भौगौलिक बदलाव और प्राक्रतिक संकट किसी क्षण रहने वाले लोगो की क्रियाओं द्वारा पैदा होते हैं। कई बार भूमि कटाव, पानी और वायु प्रदूषण मानवीय व्यवहारों द्वारा काफ़ी मात्रा में पाया जाता है कि जिसके लिए नए

प्रतिमानों और कानूनों को बनाना पड़ता हैं, जैसे कि कैसे संसाधनों का प्रयोग करना चाहिए और कैसे उत्पादनों को निपटाना चाहिए।

मूल्य और विश्वास

सामाजिक परिवर्तन में मूल्यों की भूमिका का कार्य मैक्स वेबर की पुस्तक *'द प्रोटेसटेन्ट एथिक एण्ड़ द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिजम'* में देखने को मिलता हैं जिसमें वेबर का मत था कि समुहो के धार्मिक विश्वासो में पूंजीवादी मनोवृति को पैदा करने में प्रोटेस्टेन्ट घर्म के कल्वीनीसटस ने अपनी भूमिका अदा की हैं। वेबर यह कहने की कोशिश कर रहे हैं कि कई ऐतिहासिक स्थितियों में विचार और मूल्य सामाजिक परिवर्तन की दिशा को प्रभावित करते हैं। वह यह दर्शाने की कोशिश कर रहे हैं कि आधुनिक पूंजीवादी का उदय प्रोटेस्टेन्ट धार्मिक नीति या नैतिक सिद्वान्तों के धार्मिक मूल्यों पर आधारित होती हैं।

इसके इलावा मूल्यों और विश्वासों के विरूद्व संघर्ष भी परिवर्तन का महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। उदाहरण के लिए, नस्ल या जाति उच्चता, मूल्य और परिचित समानता के मौके पर आधारित मूल्यों के मध्य संघर्ष हो जाते हैं। नए कानूनों के उद्‌भव से यह निश्चित होता हैं कि व्यक्ति जाति या नस्ल पर आधारित भेद भावों को देख नहीं सकते। इसी तरह, समाज के अंतर्गत समूहों में संघर्ष नए अविष्कारों और परिवर्तन का स्त्रोत हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, पश्चिमी यूरोप में राजनीतिक लोकतंत्र वर्ग संघर्षों का विस्तृत परिणाम हैं।

सामाजिक परिवर्तन के लिए मानव (व्यक्ति) एक कारक के रूप में: महान पुरूष प्रस्ताव

यह एक विश्वास हैं कि इतिहास महान पुरूषों या नाटककारों के प्रभाव द्वारा निर्धारित किया जा सकता हैं, जोकि काफी प्रभावकारी व्यक्ति होते हैं। कुछ व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत आकर्षण सफलता, बुद्विमानी या राजनीतिक कुशलता के कारण अपनी शक्ति को इस तरीके से प्रयोग करते है कि वे इतिहास बदल सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि नेताओं और प्रतिभाशाली व्यक्तियों के द्वारा सामाजिक परिवर्तन के लिए किया गया योगदान महत्वपूर्ण होता हैं। ये महान पुरूष कई प्रकार की स्थितियों का सामना करते हैं और आकर्षित नेताओं जिनके विशेष व्यक्तिगत गुण होते हैं कई घटनाओं पर अपने चिन्ह् छोड़ जाते हैं।

यद्यपि, उपर्युक्त कारक परिवर्तन के कारक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, हालांकि जनसंख्याकीय/जैविकीय, तकनीकी और शैक्षिक सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण कारक होते हैं।

जैविकीय या जनसंखियकीय कारक

जनसंख्याकीय कारक जनसंख्या की बनावट और संख्या की विशेषता पर आधारित होते हैं। जैविकीय प्रक्रिया के भाग के रूप में मानवीय जन्मदर, मृत्यु, आप्रवास और जनसंख्या की घनत्वता भी सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करती हैं। जब जनसंख्या बढ़ती या घटती रहती हैं तो जनसंख्या के आकार या बनावट में बदलाव आता रहता हैं। जनसंख्या के आकार में परिवर्तन व्यक्ति के आर्थिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ सकता हैं, जिसका परिणाम, जीवन के अन्य पक्षों में भी परिवर्तन होता हैं। उदाहरण के लिए, ज्यादा मात्रा में जनसंख्या की बढोतरी समाज के संसाधनों, स्वास्थ्य और सुधारक योजना पर भी प्रभाव डालती हैं। जनसंख्या की बढती दर कई विकासशील देशों में गरीबी की बढ़ोतरी का कारण भी हैं। गाँवों से प्रवास औद्योगीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाता हैं।

19वीं शताब्दी में जनसंख्या की दृष्टि घटना में वृद्वि ने सामाजिक परिवर्तन को बढोतरी दी तथा सामाजिक समस्याओं को बढावा दिया। खाने की समस्याएँ, घरों की समस्याएँ, बेरोजगारी, बुरा स्वास्थ्य, गरीबी, जीवन का निम्न स्तर आदि इसके प्रत्यक्ष परिणाम हैं। इसके विपरीत, कई ऐसे देश भी हैं जो जनसंख्या की कमी की समस्या से जुझ रहे हैं। कई यूरोपीय और पश्चिमी देश कम जनसंख्या दर की समस्या से जुझ रहे है। यू. के, यू. एस. ए स्वीडन आदि कई देश में कम जन्म दर के कारण नौजवान जनसंख्या की कमी पाई जाती हैं। दूसरी तरफ, मृत्यु दर की गिरावट के कारण कई देशों में बुजुर्गों की संख्या बढती जा रही हैं, जिसके अपने ही परिणाम होते हैं।

जनसंख्या में कमी से कई सामाजिक समस्याओं को सुलझाया जा सकता हैं। यह आर्थिक असुरक्षा, बेरोजगारी समस्या और सामाजिक तानवों को कम करने में मदद करती हैं। देश की जनसंख्या की संख्या और प्राकृतिक संसाधनों में बराबर सतुलन होना बहुत जरूरी होता हैं। इस सतुलन में कोई भी परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का कारण बन सकता हैं। औद्योगीकरणीय राष्ट्रों को इस सतुलन को बनाए रखना चाहिए नहीं तो संसाधनों की कमी के कारण विकास की निरन्तरता को बनाए रखना मुश्किल हो जाऐगा।

इस प्रकार मृत्यु दर, जन्म दर और विवाहित दर में परिवर्तन सामाजिक अभिकृति और सामाजिक संबंधों में परिवर्तन को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिए, वे देश जिनकी संख्या बढ़ती रहती हैं, वहाँ सीमित संसाधन होते हैं, जो निश्चित स्थितियों के अंतर्गत होते हैं, और जहाँ साम्राज्यवाद और भौतिकवादिता की चाहे पाई जाती हैं। जबकि ये

सभी अभिकृतियाँ जनसंख्या की बढ़ोतरी को और भी बढ़ावा देती है, इसके अलावा, कई बार जनसंख्या की वृद्वि के साथ जनसंख्या नियन्त्रण भी एक नया मोड़ ले सकता हैं और जिसका पारिवारिक संबंधों और यहाँ तक की विवाह की तरफ नजरीय पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ सकता है। परिवार की संख्या की कमी के साथ पति–पत्नी के बीच संबंध, बच्चों तथा माता–पिता के मध्य संबंध, बच्चों के सामाजीकरण के तरीके में, घर में औरत की स्थिति में और परिवार में, आत्म निर्भरता की दर में परिवर्तन पाया जाता है।

तकनीकी कारक

तकनीकी सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता हैं। तकनीकीय कारकों में मानवों की वे स्थितियां आती हैं, जिसका परिणाम उनके जीवन पर पाया जाता हैं। अपनी जररूतों को पूरा करने के लिए, अपने जीवन को आरामदायक बनाने के लिए मानव ने सभ्यता बनाई। तकनीकी, सभ्यता का ही उत्पादन हैं। जब वैज्ञानिक ज्ञान को जीवन की समस्याओं पर लागू किया जाता हैं वह तकनीकी बन जाती हैं इसीलिए विज्ञान और सभ्यता एक साथ आगे बढ़ते हैं। तकनीकी को एक क्रमिक ज्ञान के रूप में पारिभाषित किया गया हैं, जिसको मानवीय उद्देश्यों को पूरा करने के लिए प्रयोग में लाया जाता हैं। (उदाहरण के लिए, आर्थिक उत्पादन के लिए मशीनों का परिचालन और औजारों का प्रयोग आता हैं)। तकनीकी विज्ञान के ज्ञान का प्रयोग होता हैं जोकि काफी तीव्र गति से बढ़ता जा रहा हैं। तकनीकी के उत्पादकों के प्रयोग से मानव सामाजिक परिवर्तन ला रहा हैं। तकनीकी के सामाजिक परिणाम बहुत फैले हुए हैं। मार्क्स के अनुसार, सामाजिक संबंधों की बनावट के लिए और मानसिक धारणा एवं अभिकृति तकनीकी पर निर्भर हो गई हैं।

बाॅक्सः–2

विज्ञान तथा तकनीकी भिन्नता

समाज पर तकनीकी के प्रभाव पर चर्चा के लिए, हमें विज्ञान तथा तकनीकी के मध्य अंतर का पता होना चाहिए, क्योंकि दोनों एक दूसरे के साथ अस्त–व्यस्त होते हैं। किंग्सले डेविस ने इनके मध्य अंतर यह कह कर किया कि विज्ञान सांस्कृतिक विरासत का ही भाग हैं, जोकि प्रकृति के क्रमिक ज्ञान को प्रस्तुत करता है और तकनीकी वह भाग हैं, जोकि विज्ञान के ज्ञान का प्रयोग करता है। उनका विश्वास है कि तकनीकी, अनुभवों का परिणाम होती हैं, जोकि व्यवहारिकता का प्रमाण हो सकती हैं।

तकनीकी कारको में शामिल हैंः–

मशीनरी औद्योगिकता की पहचान
संचार के साधनों का विकास
यातायात के साधनों का विकास
नई कृषिक तकनीकी का विकास

पुर्व शिला युग से तकनीकी विकास, सामाजिक जररूतें और परिवर्तन आपस में जुड़े हुए हैं। यहां तक कि तकनीकी कारक, अन्य कारको के तुलना में तीव्रता से परिवर्तन लाते हैं। नई तकनीकों का विकास, नए अविष्कार, नए उत्पादन के साधन और नए जीवन के स्तर समाज में तीव्रता से परिवर्तन लाते हैं। मशीनीकरण ने हमारी सोच और जीवन के स्तर को बदल दिया है। ज्यादा से ज्यादा लोग शहरों में रहते हैं। उनके जीवन के तरीके और सामाजिक संबंधों में परिवर्तन आ रहा हैं। वे प्रकृति से काफी दूर जा रहे हैं और सोचते हैं कि चीजों का ज्यादातर निर्धारण प्रकृति की तुलना में व्यक्तियों द्वारा किया जाता हैं।

तकनीकी काफी स्तरों से होकर गुजरती हैं। सामाजिक जररूतों और कुशलता के स्तर पर आधारित मानव नए तकनीकी जैसेः यातायात, संचार, उत्पादन आदि का विकास करते हैं और उसी प्रकार, सामाजिक संगठनों में परिवर्तन आता हैं। प्राचीन व्यक्ति की जररूत उस युग के अनुसार बहुत सीमित थी और उसी प्रकार उस समय के सामाजिक सगंठन भी बहुत सरल या साधारण होते थे। सामाजिक व्यवस्था हल तकनीकी पर आधारित होती थी और जानवरों की ऊर्जा कृषि तथा ग्रामीण समुदायों तक पाई जाती थी। सरल और साधारण तकनीकी जैसेः हाथ–करथा (हाथ से कपड़ा बुनना) लोहार एवं पहिया बनाना, हाथों द्वारा बनाई जाने वाली एक साधारण आर्थिकता को विकसित करती थी। जिस पर परिवार की उत्पादन व्यवस्था आधारित थी। वर्तमान दिनों में सामाजिक संगठन और भी जटिल, विशेषज्ञता और द्वितिय अप्रत्यक्ष, अव्यक्तिगत और औपचारिक हो गऐ हैं। इसका कारण, विशाल मशीनें, विस्तृत संचार व्यवस्था और यातायात के सांधनों का विकास हुआ हैं।

आधुनिक फैक्टरी, यातायात के साधन, मशीने सर्जरी, संचार के साधन, कम्पयूटर तकनीकी आदि समाज में व्यक्तियों के व्यवहारों, मूल्यों, अभिकृतियों पर प्रभाव डालते है। साधारणतया, उदाहरण के रूप, में और अन्य आधुनिक यातायात के साधनों का परिणाम संस्कृति का प्रसार या फैलाव होता हैं। यह उन व्यक्तियों में अंतक्रियाओं की बढ़ोतरी से होता हैं जो एक दूसरे से काफी दूर–दूर रहते है यातायात और संचार की तकनीकी ने खाली समय की क्रियाओं मे बदलाव किया हैं। इसमें सामाजिक जाल तंत्र को बनाने में मदद की हैं और नए सामाजिक संबंधो को बनाने में भी मदद की हैं। यह तकनीकी प्रगति का कारण है कि हम एक दूसरे के काफी नजदीक आ गए है और हमारे रहन

सहन, सोचने और व्यवहार करने के तरिके में काफी परिवर्तन आ गया हैं। तकनीक ने हमारे समाज में नगरीकरण में मदद की हैं। प्रत्येक तकनीकी अविष्कार ने हमारे जीवन के नजरीये को बदल दिया है। श्रम का विभाजन, मजदूर संघ और विशेषीकरण, जोकि इन दिनों में काफी आम है और जो काफी तीव्रता से हमारे नियन्त्रण को बदल रहे है या प्रभावित कर रहे हैं ये सब तकनीकी की प्रगति का ही परिणाम हैं। तकनीकी प्रगति के कारण ही प्राचीन समाजों में सरल श्रम का विभाजन जटिल श्रम के विभाजन में बदलता गया हैं। इस जटिल श्रम के विभाजन के रूप ने व्यापारिक विशेषीकरण के विकास में काफी सहायता की हैं। व्यवसायिक विशेषीकरण के विकास ने समाज में जनसंख्या को काफी संख्या के समूहों में बाँट दिया हैं।

इस प्रकार, तकनीक काफी मात्रा में बढ़ती जा रही हैं और इसके विकास के साथ समाज की जनसंख्या में निरन्तर परिवर्तन आ रहा हैं।

शैक्षिक कारक

शिक्षा भी सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक हैं। शिक्षा की भूमिका सामाजिक परिवर्तन का ही यंत्र हैं और आज इसमें विकास को काफी विस्तृत तौर पर स्वीकार किया जाता हैं। शिक्षा व्यक्तियों के दृष्टिकोण और अभिकृति में परिवर्तन करके सामाजिक परिवर्तन को लेकर आती हैं। यह सामाजिक संबंधों के प्रारूपों में परिवर्तन करती हैं और जिसका परिणाम सामाजिक परिवर्तन होता हैं। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति, उसके जीवन और जीवन स्तर में परिवर्तन लाना होता हैं। व्यक्ति में परिवर्तन समाज में अपने आप परिवर्तन लाता हैं।

शिक्षा द्वारा तरह के परिवर्तन हुऐ हैं। शिक्षा में हमारे रीतिरिवाजों, प्रथाओं, नैतिकता और आदतों, धार्मिक विश्वासों और दार्शनिक सिद्वान्तों को प्रभावित किया है। इसने हमारी कल्पना शक्ति को बढ़ाया हैं और हमारे सीमित विचारों, पूर्वाग्रह और गलतफहमियों को खत्म किया हैं। औरतों की स्थिति में तीव्रता से सुधार और उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलने एवं सामाजिक संबंधों में सुधार लाने में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। अपनें परिवार से बाहर रोजगार प्राप्त करने में पारिवारिक संबंधों की इसने गतिशीलता को बदलने में मदद की है।

योजनाबद्ध शैक्षिक अविष्कार नीति योजनाएं तथा प्रोग्राम सामाजिक एकाग्रता में सहयोग देते हैं और कुशल शैक्षित मजदूर संघ तथा निर्वाचक समुह में भी एकाग्रता पैदा करते हैं। शिक्षा राजनीतिक परिवर्तन लाने में मदद करती हैं। जिसके अंतर्गत ज्यादातर लोग राष्ट्रीय राजनीति में अपना सहयोग देते है। यह व्यक्ति को अपने अधिकारो और कर्तव्यो

के प्रति जागरूक कराती हैं और अन्य व्यक्तियों के समान अधिकारो की भी सुरक्षा करती हैं।

जैसा कि ऐलेक्स इन्कल्स ने बताया हैं कि भिन्न–भिन्न स्तर की शिक्षा का भिन्न भिन्न स्तरो पर प्रभाव पड़ता हैं। विकासशील देशों में जैसे भारत में प्राथमिक स्कूल शिक्षा पूर्ण जनसंख्या को कार्य करने के योग्य बनाती हैं। जिसे वह पहले कभी भी नहीं कर सकते थे। साक्षरता, उन्हें किसी केन, बोतलों, टीन के चिन्ह् बॉर्डो को पढ़ने, अखबार पढ़ने, जन्मदर के परिचायिका, अन्य शहर जाने में मदद करती है। यह घटनाएँ सामाजिक परिवर्तन हैं। इसीलिए विकासशील देशों में प्राथमिक स्कूल शिक्षा, उच्च शिक्षा की तुलना में बहुत महत्ता रखती हैं। यद्यपि, विस्तृत तौर पर प्राथमिक शिक्षा का विकासशील देशों के लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ता हैं। प्राथमिक शिक्षा की विचारात्मक निरन्तरता रूढ़िवादिता को बनाए रखती है और यह समाज की परम्पराबद्वता रूप को दर्शाती हैं। यहां नई विचारधारा या नई जीवन के तरीके का कोई विस्तार नहीं होता हैं। इसीलिए यहां उच्च शिक्षा की बराबर जरूरत होती है, जो व्यक्ति को रोजमर्रा के मूल्यों पर प्रश्न करने के लिए उत्साहित करे और साथ हैं आलोचनात्मक विचारों को भी विकसित करे।

निष्कर्ष

इस पाठ में हमने सामाजिक परिवर्तन की जटिल घटना के भिन्न–भिन्न रूपों को देखा हैं। हमने अपना अध्ययन सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा से शुरू किया और फिर इसकी विशेषताओं को दर्शाया। हमने सामाजिक और संस्कृति के परिवर्तन के मध्य अंतर को भी दर्शाया हैं। इसके आगे हमने कहा कि अविष्कार, खोज और प्रसार परिवर्तन के तीन मूल तरिके हो सकते हैं और परिवर्तन का उदभव अंत समूह, बर्हियसमूह या दोनो भी हो सकते हैं। इसके बाद हमने बताया कि सामाजिक परिवर्तन के कई रूप हो सकते हैं जैसे उद्‌भव, विकास, प्रगति और क्रांति। ये अवधारणाएँ कई बार सामाजिक परिवर्तन की धारणाओं के साथ अस्त व्यक्त हो जाती है और जिन्हे सही तरिके से समझना जरूरी हो जाता हैं। हम यह पता चला कि सामाजिक परिवर्तन कई कारणो से होता हैं– पर्यावरणीय कारक, मूल्य एवं विचार, प्रभावी व्यक्तियों, जैविकीय कारक, तकनीकीय कारक और शैक्षिक कारक। हमने जनसंख्याकीय, तकनीकीय और शैक्षिक कारको की विस्तृत तौर पर चर्चा की हैं। तथापि, इसके अलावा कई और कारक भी है जिन पर चर्चा की जा सकती हैं जिसमें हम यह देख सकेंगे कि कैसे और क्यो सामाजिक परिवर्तन होता हैं।

शब्दावली

प्रसार: यह वह प्रकिया है जिसमें सांस्कृतिक विशेषता का एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में प्रसार होता हैं।

उद्भव: यह विशेष परिवर्तन की प्रकिया होती है (प्रकृति में स्वाभविक) जोकि निरंतरता और परिवर्तन की दिशा जोकि सामाजिक व्यवस्था की संरचना एंव संख्या में बदलाव को पैदा करती हैं को दर्शाती हैं।

नवीनीकरण: यह नए विचार, यंत्र या प्रकिया या नए उपन्यास को बनाने और पहले से अस्तित्व में किसी चीज़ का सही प्रयोग करने में मदद करती है। खोज एवं अविष्कार दोनो मिलकर ही नवीनीकरण बनते हैं।

प्रगति: यह वह बदलाव है जो कुछ अपरिभाषित लक्ष्यो की दिशा की ओर बढ़ता हैं।

सामाजिक परिवर्तन: परिवर्तन या बदलाव जोकि सामाजिक व्यवस्था की संरचना और कार्यों में होता हैं।

तकनीकी: औजारों तथा तकनीकों का प्रयोग जिस के द्वारा व्यक्ति समाज में अपने प्रयोग के लिए किसी चीज का उत्पादन करते हैं।

अभ्यास

प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 1–15 शब्दों के बीच दीजिए:

1. सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित कीजिए।
2. सामाजिक परिवर्तन के मूल स्त्रोतों के नाम लिखिए।
3. सामाजिक परिवर्तन की दो विशेषताएं बताइए।
4. आन्तरिक परिवर्तन क्या हैं ?
5. सामाजिक परिर्वतन के लिए जिम्मेदार कुछ कारको के नाम लिखो?
6. प्रगति क्या हैं ?
7. नियोजित परिर्वतन के उदाहरण लिखो।
8. अनियोजित परिर्वतन के दो उदाहरण लिखो।

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर 30–35 शब्दों में दीजिए:

1. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ बताइए।

2. प्रसार क्या हैं ?
3. उद्भव तथा क्रांति को संक्षिप्त रूप में लिखो।
4. तीन मुख्य तरीकों की सूची बनाएं जिसमें सामाजिक परिवर्तन होता हैं।
5. वह तीन स्त्रोंत क्या है जिनसे परिवर्तन आता हैं ?
6. सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिर्वतन के मध्य संक्षिप्त रूप में अन्तर कीजिए।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 75–85 शब्दों में दीजिये:

1. सामाजिक परिवर्तन के मुख्य प्रकार क्या है? संक्षिप्त रूप मे इन पर विचार विमर्श करे।
2. सामाजिक परिवर्तन के जनसंख्यात्मक कारक का संक्षिप्त रूप वर्णन करो।
3. सामाजिक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार चार कारकों को लिखो।
4. शैक्षिक कारक तथा प्रौद्योगकिी कारक के मध्य कुछ अंतरो को दर्शाइए।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 250–300 शब्दों में दीजिए:

1. सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित कीजिए। इसकी विशेषताओं पर विस्तृत रूप मे विचार विमर्श करे ?
2. सामाजिक परिवर्तन के स्त्रोतों को विस्तृत रूप में दर्शाइए ?
3. सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक लिखो।
4. सामाजिक परिवर्तन से आपका क्या अर्थ है ? सामाजिक परिवर्तन का जनसंख्यात्मक कारक बताओ।
5. सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में शैक्षिक कारक की भूमिका पर विचार विमर्श करो ?
6. सामाजिक परिवर्तन की प्रौद्योगकी (तकनीकी) कारक को विस्तृत रूप में लिखो ?

इकाई : 6

समाजशास्त्र के संस्थापक जनक

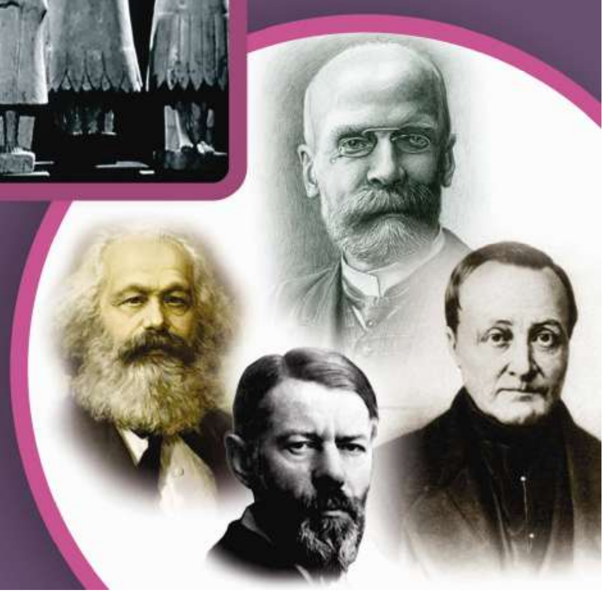

अध्याय 12

समाजशास्त्र के संस्थापक जनक

मुख्य बिन्दुः

12.1 अगस्त कोंत
- 12.1.1 प्रत्यक्षवाद
- 12.1.2 तीन चरणों का नियम

12.2 एमिल दुर्खाइम
- 12.2.1 श्रम विभाजन . सामाजिक तथ्य
- 12.2.2 श्रम विभाजन

12.3 कार्ल मार्क्स
- 12.3.1 वर्ग एवं वर्ग संघर्ष

12.4 मैक्स वेबर
- 12.4.1 सामाजिक क्रिया
- 12.4.2 सत्ता के प्रकार
- 12.4.3 धर्म

परिचय

समाज का औपचारिक अध्ययन एक अकादमिक अनुशासन के रूप में 19 वीं शताब्दी में यूरोप में प्रारम्भ हुआ। ऐसा माना जाता था कि एक विषय के रूप में समाजशास्त्र का उद्‌भव यूरोप के समाज में तेजी से उभरने वाले परिवर्तनों को समझने के लिये हुआ। यूरोप के समाज में औद्योगिक क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति तथा नवजागरण के विचार के विस्तार के कारण पूर्व की तीन शताब्दियों में सामाजिक संस्थाओं में विभिन्न परिवर्तन देखे गये। ये तीन कारक समाजशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण माने जाते हैं जो एक स्वतन्त्र अनुशासन को समझने, व्याख्या करने तथा समाज की प्रकृति के विषय में भविष्यवाणी करने में सहयोग करता हैं।

यूरोप में औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप 16 वीं, 17वीं एवं 18 वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में उद्योगों का विस्तार हुआ। कताई तथा छापेखाने के आविष्कार ने धर्म एवं अन्धविश्वास के उपर विज्ञान की श्रेष्ठता को सिद्ध किया। समाज में उद्योगों के कारण उत्पन्न अनेक परिवर्तनों ने जीवन शैली को भी प्रभावित किया। 17 वीं और 18 वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में नवजागरण का युग बौद्धिक विकास तथा दार्शनिक चिंतन में परिवर्तनों के लिये जाना जाता हैं। नवजागरण के युग से सम्बद्ध सबसे महत्वपूर्ण विचारक फ्रांसीसी दार्शनिक चार्ल्स मांटेस्क्यू तथा जीन जैक्स रूसो थे। ये विचारक आस्था के बजाय विज्ञान और तर्क की श्रेष्ठता पर विश्वास करते थे। नवजागरण के विचारकों ने सामाजिक प्रघटना के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये वैज्ञानिक अध्ययन पर बल दिया।

1789 की फ्रांसीसी क्रांति यूरोप के इतिहास में एक बहुत महत्वपूर्ण घटना थी तथा इसने समग्र विश्व को प्रभावित किया। इसके परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता, समानता तथा भाईचारे के विचारों को प्राथमिकता मिली। क्रांति ने एक समतावादी समाज के निर्माण पर बल दिया जिसने धार्मिक विचारों और प्रथाओं को कमजोर किया।

यद्यपि ये तीन प्रमुख क्रांतियां विज्ञान, तार्किकता तथा समानता के विचारों को महत्व देने का परिणाम हैं, हांलाकि, इनके द्वारा उत्पन्न तीव्र परिवर्तनों का व्यापक विरोध हुआ। लुईस डी बोनार्ड (1753–1821) जैसे विचारक क्रांतिकारी परिवर्तनों के कारण परेशान तथा शांति और सौहार्द की तरफ वापस लौटना चाहते थे। उनमें से कुछ जैसे अगस्त कोंत पश्चिमी समाज की सामाजिक संरचना में होने वाले तीव्र परिवर्तनो से नाराज थे। वे समाज की वैज्ञानिक समझ के आधार पर समाज व्यवस्था का मार्ग ढूंढना चाहते थे।

इस अध्याय में हम समाजशास्त्र के कुछ महत्वपूर्ण क्लासिकल (शास्त्रीय) विचारकों के प्रमुख योगदानों की चर्चा करेंगे। अगस्त कोंत, कार्ल मार्क्स, मैक्स बेवर तथा एमिल दुर्खाइम प्रमुख पश्चिमी विचारक हैं जिन्होंने समाजशास्त्र के अनुशासन में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। इन्होंने ना केवल महान विचारों को विकसित किया है बल्कि समाजशास्त्रियों की आने वाली पीढ़ी तथा समाजशास्त्र के चिन्तन सम्प्रदायों को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया हैं।

अगस्त कोंत (1798–1857)

अगस्त कोंत, एक फ्रांसीसी दार्शनिक, को समाजशास्त्र के जनक के रूप में जाना जाता हैं।

वह विद्यालय में एक बुद्धिमान छात्र थे तथा सन् 1814 में उन्होंने पेरिस में इकोल पॉलिटेकनिक नामक नवीन स्थापित संस्था में प्रवेश लिया। हांलाकि विद्यालय बन्द होने के बाद तथा 1816 में पुनः संगठित होने के बाद कोंत वापस नही लौटे। उन्होंने पेरिस में एक साधारण जीवन व्यतित किया, 1817 तक गणित में अध्यापन कार्य किया, उसके बाद समाजवादी विद्वान हेनरी डी सेंट साइमन के सचिव बन गये। यद्यपि 1824 में कोंत बौद्धिक असहमति के कारण सेंट साइमन से अलग हो गये, अगस्त कोंत के दार्शनिक विचारों पर सेंट साइमन का गहरा प्रभाव था। कोंत ने विभिन्न पुस्तकें लिखी जैसे 'द कोर्स ऑन पॉजिटिव फिलॉसफी' (1830–1842, 6 अंक)', 'सिस्टम ऑफ पॉजिटिव पॉलिटी' (1851–1854, 4 अंक) तथा 'अर्ली राइटिंगस' (1820–1829)।

मुख्य योगदान

प्रत्यक्षवाद

अगस्त कोंत ने 'प्रत्यक्षवाद' की अवधारणा प्रस्तुत की। प्रत्यक्षवादी मानते हैं कि सामाजिक प्रघटना को वैज्ञानिक व्याख्या के आधार पर समझा जा सकता हैं। उन्होंने 'समाज भौतिकी' नामक एक नया विषय प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि प्राकृतिक वैज्ञानिकों की तरह, समाज वैज्ञानिक भी समाज का अध्ययन करके सामाजिक व्यवहार को नियन्त्रित करने वाले नियमों को खोज सकते हैं। इन नियमों के आधार पर सामाजिक संरचना में परिवर्तन तथा उसमें भविष्यवाणी करना संभव होगा। विज्ञान के साथ उनके अत्यधिक लगाव ने इस विश्वास को विकसित किया कि जिस प्रकार मनुष्यों का बौद्धिक विकास होता हैं उसी प्रकार, समाजों का भी विकास होता हैं।

कोंत मानते हैं कि समाज का नया विज्ञान अर्थात समाजशास्त्र सभी प्राकृतिक विज्ञानों की भांति तार्किकता और अवलोकन पर आधारित होना चाहिये। विज्ञान की भांति सभी घटनाओं की व्याख्या प्राकृतिक नियमों पर आधारित सिद्धान्तों के आधार पर करने का प्रयास करते हैं, समाजशास्त्र में भी ऐसा ही होना चाहिये, अर्थात ऐसे नियमों को खोजना चाहिये जो सामाजिक स्थिरता तथा परिवर्तनों को निर्धारित करते हैं। अनिवार्य रूप से, प्राकृतिक विज्ञानों की भांति, समाजशास्त्र एक उपयुक्त समाज की स्थापना के लिये प्रयुक्त किया जाना चाहिये। नवीन विज्ञान के द्वारा मानव कल्याण को बढ़ावा देना चाहिये। इससे हमें ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जो समाज को सुधारने में हमारी सहायता करता हैं। यह नियमों का निर्धारण करेगा जो मानव अन्तःक्रिया तथा सम्बंधों को नियंत्रित करते हैं, संस्थाओं को स्थापित करते हैं तथा समाज में व्यवस्था बनाये रखने का आश्वासन देते हैं और सामाजिक परिवर्तन को दिशा प्रदान करते हैं।

कोंत ने यह भी अनुभव किया कि समाजशास्त्र का पद्धतिशास्त्र प्राकृतिक विज्ञानों के समान ही होना चाहिए। इसमें अवलोकन, प्रयोग, तुलना को सम्मिलित करना चाहिए।

- अवलोकन
- प्रयोग
- तुलना

अवलोकनः यह मानव व्यवहार के प्रत्यक्ष अवलोकन से जुड़ा हैं, तथा एक आधारभूत सिद्धान्त 'एक व्यक्ति क्या देखना चाहता है' से निर्देशित होता हैं।

प्रयोगः यद्यपि अनेक सामाजिक प्रघटनाओं में औपचारिक प्रयोग करना वास्तव में संभव नही हैं, उदाहरण के लिए, मॉ का प्रेम। परंतु फिर भी थोडी बहुत बाधाओं के बावजूद प्रयोग किये जा सकते हैं।

तुलनाः विश्व के विभिन्न हिस्सों में विकास के विभिन्न चरण हैं जिनके आधार पर विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं में तुलना की जाती हैं, इसलिए सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक परिवर्तन को अच्छे ढंग से समझने में हमें सहायता मिलती हैं।
इस प्रकार, कोंत ने समाजशास्त्र को 'सामाजिक व्यवस्था' एवं 'प्रगति' के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया। उनका सुझाव था कि समाजशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य ऐसे क्रमबद्ध चरणों को खोजना हैं जिसके माध्यम से मानव समाज यूरोपीय सभ्यता के चरण तक पहुंच गया हैं। कोंत ने समाजशास्त्र की दो शाखाओं को प्रस्तुत किया– सामाजिक स्थितिकी तथा सामाजिक गतिकी। सामाजिक स्थितिकी समाज की संरचना और व्यवस्था से संबंधित है। सामाजिक गतिकी सामाजिक विकास से संबंधित हैं।

तीन चरणों का नियम

अगस्त कोंत का सबसे महत्वपूर्ण योगदान 'तीन चरणों का नियम' था जिसमें उन्होंने बताया कि किस प्रकार प्रत्येक समाज तीन चरणों –धर्मशास्त्रीय चरण, तत्वशास्त्रीय चरण तथा प्रत्यक्षवादी/वैज्ञानिक चरण से होकर गुजरे हैं।

धर्मशास्त्रीय चरणः कोंत का मानना हैं कि समाज के प्रारम्भिक चरण में लोग विज्ञान को समझने में असमर्थ थे। वे प्राकृतिक घटनाओं से डरते थे जैसे आकाश में बिजली का चमकना, आंधी–तूफान, भूकम्प तथा मौसम का बदलना इत्यादि। उन्होंने भय के कारण प्रकृति की पूजा करना प्रारम्भ कर दिया। इसलिए वे प्रत्येक प्राकृतिक और सामाजिक घटना को धर्म और ईश्वर के आधार पर समझने का प्रयास करते थे। धार्मिक गतिविधियां सभी सामाजिक अन्तःक्रियाओं तथा गतिविधियों का आधार बनी। धर्म को केवल आस्था

की आवश्यकता होती हैं तथा इसीलिये धर्मशास्त्रीय क्रियाएं अनेक पीढियों से निरन्तर जारी हैं। कोंत के अनुसार, धर्मशास्त्रीय चरण को निम्नलिखित उप–भागों में बॉट सकते हैं:–

1. **जड़पूजाः** प्रारम्भिक समाजों में एक ऐसा चरण था, जब ये माना जाता था कि प्रत्येक वस्तु में ईश्वर विद्यमान है चाहे वह भौतिक वस्तु हो या अभौतिक। इस चरण को जड़पूजा के नाम से जानते थे। लोग प्राकृतिक वस्तुओं जैसे पत्थर, पेड, पृथ्वी, हवा तथा आग इत्यादि की भय की वजह से पूजा करते थे।
2. **जीववादः** इसमें लोगों का विश्वास था कि ईश्वर केवल गतिमान और जीवित वस्तुओं में विद्यमान होते हैं। 'एनीमा' शब्द का अर्थ 'आत्मा' या गति से लिया जाता है। लोगों ने पशुओं, पक्षियों तथा साथ ही पृथ्वी और हवा की पूजा करना भी प्रारम्भ कर दिया।
3. **बहुदेववादः** इस चरण में लोग मानते थे कि देवी देवताओं के अनेक स्वरूप होते हैं जिनके कारण वर्षा, तूफान और यहां तक कि भूमि की उत्पादकता निर्भर करती हैं। इसमें ये माना जाता था कि विभिन्न देवी देवता विभिन्न घटनाओं के लिए जिम्मेदार हैं। उदाहरण के लिये, भारतीय संदर्भ में हिन्दू लोग इन्द्र, वायु, अग्नि इत्यादि देवताओं के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं।
4. **एकदेववादः** एकदेववाद का अर्थ है एक ईश्वर में विश्वास। कोंत मानते थे कि धर्म आधारित समाज अंतिम रूप से एकदेववाद की तरफ मुड जाते हैं जहां केवल एक देवता के अस्तित्व में विश्वास किया जाता हैं। ऐसा लगता हैं कि बुद्धि का विकास एक धीमी प्रक्रिया हैं। समाज चाहे भौतिक हो या अभौतिक विभिन्न देवी देवताओं के अस्तित्व को मानते और अस्वीकार करते हैं।

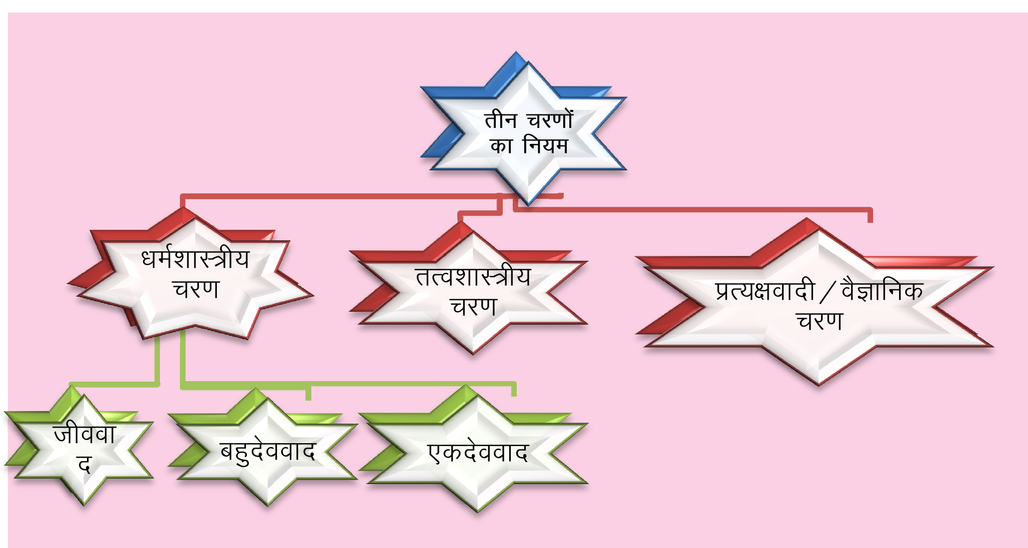

तत्वशास्त्रीय चरणः दूसरा चरण तत्वशास्त्रीय चरण हैं। 'तत्वशास्त्रीय' का अभिप्राय इस भौतिक जगत के परे होना हैं। इस चरण में लोग इस निष्कर्ष पर पहॅुचे कि कुछ अलौकिक शक्तियॉ इस ब्रहमाण्ड के निर्माण, संचालन तथा विनाश के लिये जिम्मेदार नहीं हैं। परन्तु एक अमूर्त शक्ति हैं जो मानव और प्राकृतिक घटनाओं को निर्देशित और नियन्त्रित करने के लिये जिम्मेदार है। लोग प्रकृति की शक्तियों को नियन्त्रित करने के लिये जादू तथा टोने–टोटको का प्रयोग करते थे। समाज में होने वाली प्रत्येक घटना की व्याख्या जादू के आधार पर की जाती थी। इस चरण में लोग ईश्वर तथा बुरी आत्माओं दोनो में विश्वास करते थे। हांलाकि इन आत्माओं को दूसरो के कल्याण अथवा विनाश के लिये नियन्त्रित और निर्देशित भी किया जा सकता हैं। सामाजिक यथार्थ के रूप में चारों ओर उपस्थित संस्कारों व प्रथाओं की वैज्ञानिक व तार्किक व्याख्या करने की ओर उनका यह पहला कदम था।

वैज्ञानिक या प्रत्यक्षवादी चरणः मानव समाज के उद्विकास का यह अन्तिम चरण हैं जहां वैज्ञानिक आधार पर समाज का निर्माण होता हैं। इस चरण में लोग विज्ञान की श्रेष्ठता में विश्वास करते हैं तथा प्रत्येक घटना की व्याख्या विज्ञान पर आधारित होती हैं। वे तत्वशास्त्रीय शक्तियों के अस्तित्व पर सवाल उठाते हैं तथा समाज को समझने और व्याख्या करने के लिये तथ्यों का प्रयोग करते हैं। सामाजिक गतिविधियों के मध्य कारण–परिणाम सम्बन्धों को स्थापित करते हैं। अगस्त कोंत के अनुसार यह मानव बौद्धिक विकास का महत्वपूर्ण चरण हैं। समाज की समस्याओं का समाधान सामाजिक प्रघटना के वैज्ञानिक अध्ययन में निहित होता हैं। समाज को स्थिर बनाये रखने के लिये इसे वैज्ञानिक नियमों पर आधारित करने की आवश्यकता हैं।

अगस्त कोंत के सिद्धान्त की भारत जैसे पिछड़े देश में आलोचना की गई, जहां धर्म के आधार पर किसी भी प्रघटना की व्याख्या की जाती थी, परंतु उन समाजो में विशेष रूप से पश्चिमी समाजो में यह सिद्धांत अधिक विकसित हुआ। इसने उन्हें गलत साबित कर दिया कि धर्म संस्था का स्थान विज्ञान ले लेगा। यहॉ तक कि आज भी विश्व के अनेक देशों में व्यक्तियों के सामाजिक जीवन को धर्म नियन्त्रित करता हैं।

गतिविधि–1

1 अपने राज्य में उपस्थित विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों की पहचान तथा विवेचना कीजिए।
2 व्यक्तियों के जीवन में धर्म की भूमिका को जानने का भी प्रयास कीजिए। क्या आप सोचते हैं कि धर्म की संस्था आने वाले समय में अपना महत्व खो देगी ?

कार्ल मार्क्स (1818–1883)

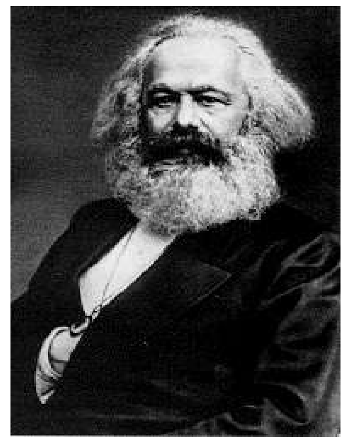

एक जर्मन विचारक तथा राजनीतिक कार्यकर्ता जो वर्ग संघर्ष तथा क्रांति से सम्बन्धित अपने विचारो के लिये अकादमिक विश्व में जाने जाते हैं। उनका जन्म 5 मई 1818 में एक यहूदी परिवार में हुआ था। उन्होंने बॉन विश्वविद्यालय और उसके बाद बर्लिन विश्वविद्यालय में कानून की पढ़ाई की। उन्होंने जेना विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। जेनी वॉन वेस्टफैलेन से विवाह के पश्चात, वह पेरिस चले गये। वह पेरिस में फ्रेडरिक एंजिल्स से मिले जिनसे उनकी मित्रता जीवन भर चली। एंजिल्स के अतिरिक्त, कार्ल मार्क्स जर्मन दार्शनिक जार्ज हीगल तथा लुडविग फायरवाख़ से प्रभावित थे। उनके प्रमुख विचारो को उनके कार्यों जैसे 'कैपिटल अंक 1' (1867 में प्रकाशित) तथा 'द मैनीफैस्टों आफॅ कम्यूनिस्ट पार्टी' जो 1848 में एंजिल्स के साथ मिलकर लिखी गई, के माध्यम से समझा जा सकता हैं।

प्रमुख योगदान

वर्ग एवं वर्ग संघर्ष

कार्ल मार्क्स के लेखन में समाज में व्याप्त असमानताओं को समझने तथा उन्हें दूर करने पर बल दिया गया हैं। हम जानते हैं कि विश्व के सभी समाजो में लोगों के मध्य विभिन्न प्रकार की असमानताएं निहित हैं। इन असमानताओं का आधार सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक तथा राजनैतिक प्रस्थिति हैं। कार्ल मार्क्स 'वर्ग' को समान आर्थिक प्रस्थिति वाले व्यक्तियों की एक श्रेणी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जिस प्रकार भौतिक संसाधनों में असमानता की दृष्टि से लोग एक दूसरे से भिन्न होते हैं, उसी प्रकार समाज में शक्ति और विशेषाधिकार की दृष्टि से में अनेक वर्ग हो सकते हैं। हांलाकि, पश्चिमी समाज से

उदाहरण देते हुए मार्क्स ये समझाते हैं कि इतिहास के विभिन्न कालों में दो प्रमुख वर्गों के बीच संघर्ष देखा जा सकता हैं, अर्थात, उत्पादन साधनों के स्वामियों और गैर–स्वामियों के बीच। उनका लक्ष्य एक वर्गहीन समाज का निर्माण करना था जिसके परिणामस्वरूप एक समान तथा न्यायोचित समाज व्यवस्था की स्थापना संभव होगी।

उनके विचारों को उचित ढंग से समझने के लिये हमें उनकी वर्ग और वर्ग–संघर्ष की अवधारणा को समझना होगा। कार्ल मार्क्स के अनुसार, सामाजिक संरचना में आर्थिक संस्थाओं की भूमिका को समझना भी महत्वपूर्ण हैं। हम जानते हैं कि प्रत्येक समाज में विभिन्न प्रकार संस्थाएं होती हैं जैसे आर्थिक, राजनैतिक, शिक्षा, संस्कृति तथा परिवार। ऐसा लगता हैं कि ये सभी संस्थाएं परस्पर सम्बन्धित हैं और एक दूसरे पर तथा समाज के सदस्यों पर प्रभाव डालती हैं। हांलाकि मार्क्स मानते हैं कि आर्थिक संस्था किसी भी समाज में सबसे महत्वपूर्ण संस्था होती है तथा यह समाज की अन्य सभी संस्थाओं पर प्रभाव डालती हैं। आर्थिक संस्था को सरल शब्दों में परिभाषित करते हुए कह सकते हैं कि यह किसी भी समाज में सेवाओं और वस्तुओं के उत्पादन, वितरण तथा उपभोग की एक प्रणाली हैं। मार्क्स के अनुसार, वस्तुओं का उत्पादन व्यक्तियों की सबसे महत्वपूर्ण क्रिया हैं, क्योंकि भौतिक आवश्यकता व्यक्तियों की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है। महिलाएं एवं पुरूष निरन्तर उत्पादन क्रियाओं में संलग्न रहते हैं। समाज एक समय विशेष में उपलब्ध प्रौद्योगिकी के स्तर के अनुरूप भोजन, संरक्षण तथा अन्य आवश्यकताओं के उत्पादन के लिये उत्पादन की विभिन्न विधियों का प्रयोग करते हैं।

यहां कार्ल मार्क्स वर्ग की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। कुछ लोग उत्पादन के साधनों के स्वामी बन जाते हैं जबकि दूसरे लोगों के पास उत्पादन के अपने साधन नहीं होते। अतः, उत्पादन सम्बन्ध दो प्रकार के हो सकते हैं अर्थात स्वामित्व एवं गैर–स्वामित्व। लोगों का एक समूह जिनका उत्पादन के साधनों पर समान स्वामित्व होता है उन्हें एक 'वर्ग' की संज्ञा दी जाती हैं। वे मानते थे कि यदि एक समाज में सभी व्यक्तियों का उत्पादन के साधनों पर समान स्वामित्व है तब केवल एक ही वर्ग होगा तथा इससे वर्गहीन समाज का निर्माण होगा। सामान्यतया उत्पादन साधनों के साथ दो प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं या तो एक व्यक्ति उत्पादन के साधनों का स्वामी हो सकता है या गैर–स्वामी। इसलिए सभी समाजों में अक्सर दो प्रकार के वर्ग होते हैं।

कार्ल मार्क्स द्वारा अपनी पुस्तक 'कैपिटल' में उत्पादन की विधियां, उत्पादन की शक्तियां, उत्पादन के साधन तथा उत्पादन सम्बन्ध जैसी अवधारणाओं का प्रयोग किया गया है। ये सामाजिक संगठन (समाज) के विभिन्न पक्ष हैं।

उत्पादन की विधियाँ : यह मार्क्सवाद की एक केन्द्रीय अवधारणा हैं तथा इसे वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन के लिये स्थापित तरीको के रूप में परिभाषित किया जाता हैं। इसमें दो प्रमुख आयाम सम्मिलित हैं– उत्पादन की शक्तियां तथा उत्पादन के सम्बन्ध।

(अ) उत्पादन की शक्तियां या उत्पादक शक्तियां : उत्पादन की शक्तियों में उन सभी तत्वों को सम्मिलित किया जाता है जिनसे उत्पादन किया जाता हैं। इसके अन्तर्गत निम्न पक्ष सम्मिलित होते हैः

1. **श्रम शक्ति–** उपयोगी कार्य करने हेतु मनुष्यों की मानसिक और शारीरिक क्षमताएं।
2. **उत्पादन के साधन–** ये उत्पादन की सामग्री हैं जैसे उपकरण, मशीने, जल शक्ति, भाप शक्ति, आणविक शक्ति तथा उत्पादन की कच्ची सामग्री जैसे कोयला, तांबा, यूरेनियम इत्यादि अर्थात ऐसी वास्तविक विधियां जिनके माध्यम से हम जीविका कमाते हैं, भूमि से अन्न पैदा करते हैं, औद्योगिक उत्पादन करते हैं तथा लाभ प्राप्त करते हैं इत्यादि।

(ब) उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धः यह सामाजिक सम्बन्धों का एक समग्र हैं जिसमें व्यक्ति जीवन के साधनों का उत्पादन तथा पुनरूत्पादन करने के लिये प्रवेश करता हैं ताकि अपने अस्तित्व को बनाये रख सके। इसमें उनका सहभागिता करना ऐच्छिक नहीं अपितु अनिवार्य हैं। इन सम्बन्धों की समग्रता कुछ हद तक स्थाई और स्थिर संरचना का निर्माण करती हैं, जैसे 'आर्थिक संरचना'। इसमें विभिन्न व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों तथा उत्पादन की शक्तियों के साथ व्यक्तियों के सम्बन्धों को सम्मिलित किया जाता हैं। सामाजिक–आर्थिक सम्बन्धों की अवधारणा को समय विशेष के संदर्भ में देखा जाता हैं उदाहरण के लिए, दास युग में मालिक के अपने दास के साथ सम्बन्ध, सामंती समाज में सामंत/जमींदार का अपनी सम्पत्ति के साथ सम्बंध एवं अर्द्धदास (बंधुआ कृषक मजदूर) का सामंत के साथ सम्बन्ध तथा पूंजीवादी युग में पूंजीपति का पूंजीगत वस्तुओं से सम्बंध एवं मजदूर/श्रमिक का पूॅजीपति के साथ सम्बन्ध।

सरल शब्दों में, मार्क्स उत्पादन की शक्तियों के अंतगर्त प्रौद्योगिकी के साथ उत्पादन के सम्बन्धों को भी सम्मलित करते हैं। उत्पादन की शक्तियों के साथ व्यक्तियों के सम्बन्धों को उत्पादन के सम्बन्ध कहा जाता हैं। उत्पादन के सम्बन्धों तथा उत्पादन की शक्तियों के बीच सम्बन्धों को समझने के लिये द्वन्द्वात्मकता की पद्धति का प्रयोग किया। उत्पादन की प्रत्येक विधि को मूर्त रूप देने के लिये उत्पादन के कुछ साधनों का प्रयोग किया जाता था, उदाहरण के लिये कृषक समाज में भूमि, बीज, उर्वरक इत्यादि तथा औद्योगिक समाज में उत्पादन के साधनों के रूप में कारखाना, मशीनें तथा उपकरणों का प्रयोग किया जाता था।

उपर्युक्त पक्षों की चर्चा कार्ल मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' में की, जहां उन्होंने लिखा की अभी तक के सभी समाजों के इतिहास को वर्ग–संघर्ष के इतिहास के रूप में समझा जा सकता हैं। मार्क्स मानते हैं कि पश्चिमी समाजों के इतिहास को उत्पादन की विधियों तथा उत्पादन के सम्बन्धों में परिवर्तन के आधार पर समझा जा सकता हैं।

उन्होंने बताया कि इतिहास के विभिन्न कालो में पश्चिमी समाज विभिन्न चरणों से होकर गुजरा हैं। आदिम सम्यावादी युग के अलावा, प्रत्येक चरण में समाज में दो वर्ग होते थे जिनके हित एक दूसरे से विपरीत होते थे। प्रौद्योगिकी के विकास के साथ उत्पादन में वृद्धि हुई तथा उत्पादन की विधियॉ भी बदल गई। स्वामी वर्ग को हमेशा समाज में ऊचा दर्जा दिया जाता था। वे समाज मे शिक्षा, राजनीतिक संस्थाओं, विवाह तथा अन्य संस्थाओं का नियन्त्रण करते थे। अन्य वर्गो को सामाजिक संस्तरण में निम्न स्थान प्राप्त था तथा उनका शोषण किया जाता था क्योंकि सभी सामाजिक संस्थाएं स्वामी वर्ग का पक्ष लेती थी। उत्पादन की विधियॉ तथा उत्पादन के सम्बन्धों की प्रकृति इतिहास के विभिन्न युगों मे परिवर्तित होती गई।

अतः पश्चिमी समाज विभिन्न चरणों से होकर गुजरा हैं। इन चरणों को उत्पादन की विधियों के अनुरूप आदिम सम्यवाद, प्राचीन समाज, सामन्तवादी समाज तथा पूँजीवादी समाज के रूप में जाना जाता हैं। प्राचीन समाज उत्पादन के लिये पशुओं तथा मनुष्यों पर आधारित निम्न स्तरीय प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते थे। इसमें मालिक तथा दास नामक दो वर्ग होते थे। उत्पादन की कृषक प्रणाली में भू–स्वामी/सामन्त तथा अर्द्धदास नामक दो वर्ग होते थे।

पूंजीवाद का चरण कारखानों में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से जुडा था। कारखानों के मालिकों को बुर्जुआ (पूॅजीपति) वर्ग तथा श्रमिक वर्ग को सर्वहारा (मजदूर) कहा जाता था। उत्पादन के पूंजीवादी चरण में, प्रौद्योगिकी के विकास के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई। स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा के कारण, कारखाना मालिक निम्न कीमतों पर वस्तुओं को बेचते हैं ताकि लाभ और अतिरिक्त मूल्य प्राप्त कर सकें। इसके परिणामस्वरूप श्रमिकों को निम्न मजदूरी प्राप्त होती हैं। हांलाकि श्रमिक वर्ग को भी यह स्वतन्त्रता होती हैं कि वे उस मालिक के यहां काम करें जो उसे अच्छा वेतन/मजदूरी दे। स्वामी वर्ग के सदस्यों

के बीच स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा के कारण उनमें से अनेक अपने कारखाने खो देते हैं अथवा उनसे हाथ धो बैठते हैं तथा गैर—स्वामी वर्ग का हिस्सा बन जाते हैं।

समाजों के इतिहास में पहली बार गैर—स्वामी वर्ग में वर्ग चेतना उभरती हैं। मार्क्स के अनुसार, इससे क्रांति उभर सकती हैं तथा परिणामस्वरूप एक वर्गहीन समाज अस्तित्व में आयेगा। मार्क्स मानते थे कि इतिहास के इस युग में दो वर्गो के मध्य सबसे बडा गैप था तथा पूँजीवादी समाज में श्रमिक वर्ग सबसे अधिक शोषित था, चूंकि उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व समाज में सभी को प्राप्त नहीं था। तथा इस समस्या का समाधान केवल तभी सम्भव था जब समाज प्रणाली में पूँजीवाद से साम्यवाद और उसके बाद समाजवाद की दिशा में परिवर्तन हो।

मार्क्स भविष्यवाणी करते हैं कि सभी समाजो में क्रांति होगी तथा परिणामस्वरूप विश्व के अनेक भागों में पूंजीवादी प्रणाली का अन्त होगा। यद्यपि, चीन, रूस तथा पूर्वी यूरोप जैसे देशों में साम्यवादी क्रांतियां देखी गई, परन्तु विश्व के अधिकांश भागों में आज भी उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली का पालन किया जाता हैं। हांलाकि, कार्ल मार्क्स की पुस्तकों तथा लेखों ने श्रमिक वर्ग आन्दोलन को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया तथा परिणामस्वरूप समग्र विश्व में श्रमिक संघों और श्रमिक समितियों की स्थापना हुई। समकालीन सामाजिक सिद्धान्तों पर मार्क्स का प्रभाव बहुत व्यापक हैं तथा मार्क्सवादी समाजशास्त्र अनुशासन की एक स्थापित शाखा पहले से ही हैं।

गतिविधि— 2

उन श्रमिक संघों के नाम खोजिए, जो आपके आस पास के कारखानों में श्रमिकों के कल्याण के लिये कार्य कर रहे हैं।

एमिल दुर्खाइम (1858–1917)

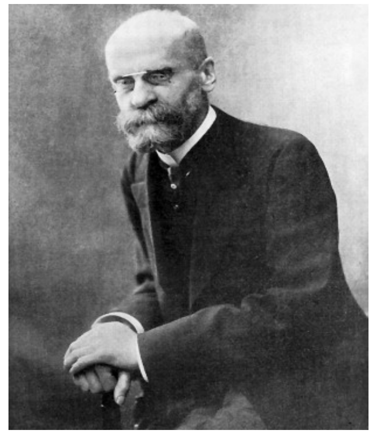

अगस्त कोंत के अतिरिक्त, एमिल दुर्खाइम को एक अन्य महान फ्रांसीसी सामाजिक विचारक के रूप में जाना जाता हैं। दुर्खाइम अकादमिक दृष्टि से काफी मजबूत थे तथा इन्हें समाजशास्त्र के प्रथम प्रोफेसर के रूप में जाना जाता है। इनका जन्म सन् 1858 में एक रूढ़िवादी यहूदी परिवार में हुआ था। उनके पिता तथा दादा रब्बी या यहूदी पादरी थे। वह समाजविज्ञान तथा शिक्षा में बोरडेक्स विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने 'समाज में श्रम विभाजन' विषय पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की, जो 1893 में प्रकाशित हुई थी। 1897 में, उन्होंने *'ला एनी सोशियोलाजिक'* नामक समाजविज्ञान के प्रथम जर्नल का फ्रांस में प्रकाशन प्रारम्भ किया। 1902 में वे पेरिस विश्वविद्यालय में नियुक्त हुए। 1913 में उनकी नियुक्ति वाले पद (चेअर) का नाम बदलकर चेअर ऑफ एजुकेशन एंड सोशियोलॉजी कर दिया गया। उन्होंने अनेक वर्षों तक फ्रांस में समाजशास्त्र विषय पढ़ाया। प्रथम विश्वयुद्ध उनकी चिन्ता का एक प्रमुख कारण था और जिसने उनको शारीरिक व मानसिक रूप से नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। उन्होंने इस युद्ध में अपने पुत्र तथा अनेक प्रिय मित्रों एवं छात्रों को खो दिया। वह इस नुकसान को सहन नहीं कर पाये तथा 15 नवम्बर 1917 को उनकी मृत्यु हो गई।

दुर्खाइम को एक प्रत्यक्षवादी माना जाता हैं, जो अगस्त कोंत की भांति विश्वास करते थे कि सामाजिक प्रघटना का वैज्ञानिक अध्ययन संभव हैं। उनका प्रमुख योगदान समाजशास्त्र की विषयवस्तु को परिभाषित करना हैं। उन्होंने समाजशास्त्र के अध्ययन के सामान्य सिद्धान्तों को भी प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि समाज व्यक्ति से अधिक महत्वपूर्ण होता हैं तथा समाज व्यवस्था को सामूहिक चेतना के द्वारा बनाये रखा जा सकता हैं।

प्रमुख योगदान

सामाजिक तथ्य

एमिल दुर्खाइम के विचारों को समझने के लिये यह आवश्यक हैं कि उनकी पुस्तक *'द रूल्स ऑफ सोशियोलाजिकल मैथड्स'* से प्रारम्भ किया जाये। 1895 में प्रकाशित इस

पुस्तक में दुर्खाइम ने समाजशास्त्र की विषयवस्तु को एक विशिष्ट तथा दूसरे विषयों से पृथक रूप में प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि समाजशास्त्र की विषयवस्तु में 'तथ्यों' को सम्मिलित करना चाहिये। उन्होंने समाजशास्त्र को सामाजिक तथ्यों के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया।

बॉक्स

सामाजिक तथ्यों को अन्य तथ्यों से अलग करने के लिये दुर्खाइम ने तीन प्रमुख विशेषताओं की विवेचना की। ये विशेषताएं सामान्यता, बाह्यता तथा बाध्यता के रूप में जानी जाती हैं। इसका अभिप्राय है कि समाजशास्त्र में हमें केवल उन तथ्यों का अध्ययन करना चाहिये जो सामान्य हो तथा व्यापक रूप से विकसित हो। दूसरा, केवल उन तथ्यों को अध्ययन करना चाहिये जो व्यक्ति से बाहर उपस्थित है (आंतरिक नहीं, जैसा जीव विज्ञान में होता है)। और अन्तिम, केवल उन तथ्यों को सामाजिक तथ्य मानना चाहिये जो व्यक्तियों पर कुछ प्रभाव डालते हैं। सामाजिक तथ्यों के उदाहरण के रूप में विवाह, परिवार, धर्म, कानून तथा संस्कृति इत्यादि की चर्चा कर सकते हैं।

दुर्खाइम द्वारा प्रस्तुत सामाजिक तथ्य के उदाहरणों में आत्महत्या, श्रम विभाजन तथा समाज की सामूहिक एकता/सुदृढ़ता इत्यादि है। दुर्खाइम का मानना है कि सामूहिक चेतना भी एक सामाजिक तथ्य है तथा यह व्यक्तिगत चेतना को नियन्त्रित करती है और दिशा प्रदान करती है।

गतिविधि – 3

- परिवार, विवाह तथा धर्म किस प्रकार सामाजिक तथ्य हैं ? यदि हम दुर्खाइम की पद्वति को लागू करते हैं, तो परिवार, विवाह तथा धर्म की संस्थाओं में बाह्यता, सामान्यता एवं बाध्यता की विशेषताएं पाई जाती हैं।
- अब इन समान स्थितियों को दुर्खाइम द्वारा प्रस्तुत श्रम विभाजन तथा सामाजिक एकता को सामाजिक तथ्य के रूप में समझने के लिए लागू करें।
- क्या आप समान तर्कों के आधार पर एक सामाजिक तथ्य के रूप में आत्महत्या की विवेचना कर सकते हैं ?

सामाजिक तथ्य के अध्ययन का एक अन्य महत्वपूर्ण नियम प्रस्तुत करते हुये दुर्खाइम ने बताया कि प्रत्येक सामाजिक तथ्य दूसरे सामाजिक तथ्य को प्रभावित करता हैं। सरल शब्दों में, धर्म विवाह को प्रभावित करता हैं, विवाह परिवार से सम्बन्धित है, इत्यादि तथा शिक्षा व्यक्तियों के रोजगार या व्यवसाय को निर्धारित करती हैं।

श्रम विभाजन

1893 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *'डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसायटी'* में इन्होंने बताया कि किस प्रकार श्रम विभाजन किसी भी समाज में एकता के प्रकारों को परिवर्तित कर देता हैं। इसकी व्याख्या निम्नलिखित पैराग्राफ में की गई हैं। श्रम विभाजन एक प्राचीन प्रघटना हैं। इसके परिणामस्वरूप समाज की क्षमता में वृद्धि हुई हैं। एक लम्बे समय से लगभग सभी समाजों में लिंग आधारित तथा आयु आधारित श्रम विभाजन उपस्थित हैं। महिलाएं गृहस्थी का काम करती हैं तथा पुरूष को परिवार के भरण पोषण के लिये कमाने हेतु बाहर जाने का दायित्व सौंपा गया हैं, यद्यपि वर्तमान में परम्परागत श्रम विभाजन बदल रहा है अब महिलाऐं कम्पनियों में, विश्वविद्यालयों में, पुलिस में तथा वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में कार्यरत हैं।

दुर्खाइम समाज के उद्‌विकास को आदिम से आधुनिक की तरफ हुआ मानते हैं। उन्होंने समाज का वर्गीकरण समाज में उपस्थित एकता की प्रकृति के आधार पर किया। आदिम समाज 'यांत्रिक सुदृढ़ता' पर आधारित है जहॉ इसके सदस्यों के बीच समरूपता पाई जाती हैं। यह उन समाजों में पाई जाती है जहॉ जनसंख्या कम हो तथा समुदाय के प्रतिमान अधिक महत्वपूर्ण होते थे। किसी भी प्रकार का उल्लघंन समुदाय में विघटन की स्थिति को उत्पन्न कर सकता था। यहां समाज सरल रूप में उपस्थित थे तथा लोग एक दूसरे से जुडे हुये थे क्योंकि वे समान थे। इस प्रकार की एकता को 'यांत्रिक सुदृढ़ता' कहा जाता हैं। लोगो के बीच इस प्रकार की एकता का आधार समरूपता था तथा समाज में किसी भी प्रकार की असमानता को रोकने के लिये दमनात्मक कानून का प्रयोग किया जाता था। व्यक्ति लगभग सामूहिकता में समाहित रहते थे।

आधुनिक समाज में 'सावयवी सुदृढ़ता' अपने सदस्यों की विषमरूपता पर आधारित होती हैं। यह उन समाजो में पाई जाती हैं जहां जनसंख्या अधिक हो तथा व्यक्तियों के मध्य अव्यैक्तिक सामाजिक सम्बन्ध महत्वपूर्ण होते हैं। आधुनिक समाजों में उपस्थित प्रत्येक समूह अन्य सहायक ईकाईयों पर निर्भर करता हैं। बाद में श्रम विभाजन में वृद्धि के साथ, समाज अत्यधिक विभिन्नता मूलक होते जाते हैं। इससे विशेषज्ञता उत्पन्न होती हैं परिणामस्वरूप विषमरूपता अथवा विभिन्नता देखी जाती हैं। व्यक्तियों और संस्थाओं की अन्तःनिर्भरता उपचारी/सुधारवादी कानूनों को निर्मित करती हैं। ये कानून व्यक्तियों के द्वारा उत्पन्न किये गये नुकसान की क्षतिपूर्ति करते हैं और इस प्रकार विषमरूपता को दण्ड नहीं देते। इस प्रकार की एकता व्यक्तियों को एक दूसरे से भिन्न बने रहने की स्वीकृति देती हैं तथा उनकी बहु–आयामी भूमिकाओं और सावयवी सम्बन्धों को स्वीकार करती हैं। व्यक्ति को स्वायत्ता (स्वतंत्रता) दी जाती है। व्यक्ति एक दूसरे के निकट आते

हैं तथा अपनी इच्छा से समूह का निर्माण करते हैं। इन दो प्रकार की एकताओं/सुदृढ़ताओं के मध्य अन्तर को निम्न चित्र के आधार पर समझा जा सकता हैं।

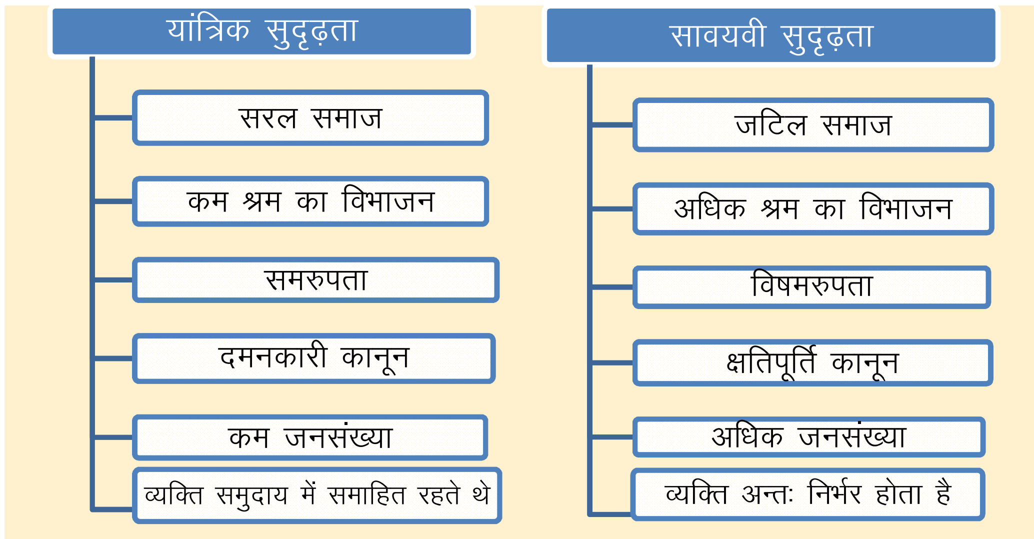

इस प्रकार, दुर्खाइम ने श्रम विभाजन की विवेचना सभी समाजों में पाये जाने वाले एक सामाजिक तथ्य के रूप में की तथा जो पूर्व के समाजों में व्यक्तियों को आयु एवं लिंग के आधार पर अपनी इच्छा से या बलपूर्वक एक या अनेक व्यवसाय चुनने को बाध्य करता हैं तथा बाद में औद्योगिक समाजों में विशेषज्ञता पर आधारित व्यवसायों पर बल देता हैं। उपर्युक्त पक्षों के आधार पर, दुर्खाइम इस बात को स्थापित करते हैं कि श्रम विभाजन लोगो के बीच एकता के आधार और प्रकृति में परिवर्तन को उत्पन्न करता हैं। उनका सिद्धान्त तार्किकता पर आधारित है तथा उनके प्रयास को वैज्ञानिक माना जाता हैं। उन्होंने अमरीका तथा समग्र यूरोप को सामाजिक विश्लेषण के अपने आधारभूत सिद्धान्तों से व्यापक रूप से प्रभावित किया। हांलाकि, दुर्खाइम समाज को अत्यधिक महत्व दिये जाने के कारण तथा व्यक्तियों की विषयपरक निर्णय लेने की प्रक्रिया की उपेक्षा करने के कारण आलोचना का शिकार हुए। विशेष रूप से औद्योगिक समाजों में, व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के अनुरूप विभिन्न व्यवसायों को चुन सकते हैं।

मैक्स वेबर (1864–1920)

मैक्स वेबर का जन्म एरफर्ट के प्रशिया नगर में एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। उनके पिता मैक्स सीनियर, कपडा व्यवसाय में संलग्न व्यापारिक एवं औद्योगिक परिवार से आये थे जो कि बाद में एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय उदारवादी सांसद बने। इस प्रकार मैक्स वेबर का पालन पोषण एक समृद्ध, महानगरीय तथा उच्च सभ्य परिवार के वातावरण में हुआ था जिनके उच्च राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्क थे। उनकी शिक्षा मुख्य रूप से हीडलबर्ग तथा बर्लिन विश्वविद्यालय में हुई थी तथा कानून में उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त किया। थोडे समय तक कानून का अभ्यास करने के बाद, 1894 में फ्रीबर्ग विश्वविद्यालय में उन्होंने पहली नौकरी की तथा दो वर्ष बाद हीडलबर्ग विश्वविद्यालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र में एक प्रतिष्ठित प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। व्यक्तिगत तथा पारिवारिक समस्याओं के कारण अपने अकादमिक जीवन में अनेक बाधाओं के बावजूद, वेबर ने व्यापक रूप से लिखा तथा समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति तथा सामाजिक असमानता की प्रकृति को समझने में योगदान दिया।

मुख्य योगदान

सामाजिक क्रिया

वेबर ने अपना लेखन सामाजिक क्रिया से प्रारम्भ किया। उन्होंने चार प्रकार की सामाजिक क्रियाओं की चर्चा की, अर्थात् ज्वैकरेशनल या लक्ष्योन्मुख तार्किक क्रिया, वर्टरेशनल या मूल्योन्मुख तार्किक क्रिया, भावनात्मक क्रिया तथा परम्परागत क्रिया।

ज्वैकरेशनल क्रिया: एक ऐसी तार्किक क्रिया हैं जो किसी लक्ष्य के सन्दर्भ में की जाती है। इन क्रियाओं में एक कर्ता अपने लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से जानता हैं तथा इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विशिष्ट साधनों का चुनाव करता है। उदाहरण के लिये, एक इंजीनियर जो पुल निर्माण का काम कर रहा हैं अथवा एक विद्यार्थी जो परीक्षा की तैयारी कर रहा हैं। ये वह क्रियाऐं हैं जो नियोजित होती हैं तथा लक्ष्य का मूल्यांकन करने के बाद की जाती हैं और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न साधनो और परिणामों को ध्यान में रखकर की जाती हैं। इसे 'साधन मूलक क्रिया' भी कहा जाता हैं।

वर्टरेशनल सामाजिक क्रियाः एक ऐसी क्रिया है जो कि तार्किक होती हैं परन्तु मूल्यों के संदर्भ में। उदाहरण के लिये, एक बहादुर कप्तान डूबते हुऐ जहाज के साथ स्वयं भी डूब जाता है। उसकी क्रिया तार्किक है इसलिए नहीं क्योंकि वह एक निश्चित और बाहरी लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है, बल्कि इसलिये की डूबते हुऐ जहाज को ना बचा पाना उसके लिए शर्म की बात मानी जाती।

परीक्षा की तैयारी करते हुए
ज्वैकरेशनल क्रिया

कपतान समुद्री जहाज के साथ निचे जाते हुएं
वर्टरेशनल सामाजिक क्रिया

माता बच्चे को संभालते हुए
भावनात्मक क्रिया

घर पर दैनिक पूजा करते हुए
परम्परागत क्रिया

भावनात्मक क्रियाः भावनाओं से सम्बन्धित होती हैं तथा यह कर्ता के मन की स्थिति से निर्धारित होती हैं। इस प्रकार की क्रियाओं का लक्ष्य जैवकरेशनैल क्रिया या वर्टरेशनैल क्रिया की तरह नहीं होता बल्कि एक दी हुई स्थिति में कर्ता की भावनात्मक प्रतिक्रिया से निर्धारित होती हैं। इसका उदाहरण हैं, एक मां के द्वारा अपने बच्चे के दुर्वव्यवहार करने पर उसे थप्पड मारना।

परम्परागत क्रियाः विश्वासों तथा प्रथाओं से संचालित होती हैं जिसके हम आदी होते हैं। इस क्रिया में व्यक्ति प्रथाओं या परम्पराओं के अनुरूप क्रिया करते हैं जो एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का हिस्सा होते हैं जिसे उसने स्थिति के अनुरूप सीखा हैं। इसका उदाहरण हैं, किसी भी धार्मिक समूह के सदस्य का व्यवहार जो लम्बे समय से स्थापित संस्कारों से सम्बद्ध हैं।

सत्ता के प्रकार

वेबर ने सत्ता के प्रकारों को क्रिया के प्रकारों से जोडने का प्रयास किया, जिसे वह शक्ति से पृथक करते हैं। शक्ति का प्रयोग बल या हिंसा के माध्यम से किया जा सकता हैं। इसके विपरीत सत्ता अधिनस्थ समूहों द्वारा श्रेष्ठ समूहों को शक्ति का प्रयोग करने की अनुमति देने पर निर्भर करती हैं। वेबर ने सत्ता को लोगो के एक विशिष्ट समूह द्वारा आदेशों को मानने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया। वैद्यानिक सत्ता वह होती हैं जिसे शासक और शासित दोनो वैद्यता प्रदान करते हैं तथा उचित मानते हैं। इन्होंने सत्ता के तीन प्रमुख प्रकार बताए जो कि निम्नलिखित हैं–

(अ) तार्किक–वैधानिक सत्ता

इस प्रकार की सत्ता तार्किक पक्षों पर आधारित होती हैं तथा कानूनों, नियमों तथा अधिनियमों के द्वारा उचित ठहराई जाती हैं। यह अव्यैक्तिक नियमों में निहित होती है जो कि वैधानिक रूप से लागू होते हैं अथवा संविदात्मक रूप से स्थापित होते हैं। यह तार्किक–वैधानिक सत्ता आधुनिक समाज में संस्तरणमूलक सम्बन्धों में तीव्रता से वृद्धि कर रही हैं। तार्किक वैधता नियमों की वैधानिकता में विश्वास पर तथा आदेश जारी करने की वैधानिक सत्ता होने के अधिकार पर निर्भर करती हैं।

(ब) परम्परागत सत्ता

इस प्रकार की सत्ता अतीत की प्रथाओ या परम्पराओं की श्रेष्ठता पर आधारित होती है। सामान्य रूप से यह पूर्व आधुनिक समाजो में पाई जाती है। परम्परागत सत्ता परम्पराओं की वैधता तथा पवित्रता के गुण में विश्वास पर आधारित होती है। इस प्रकार की सत्ता उन व्यक्तियों के द्वारा प्रयुक्त की जाती है जिन्हें यह विरासत में मिली हो। उदाहरण के लिये राजशाही। सरल शब्दों में, परम्परागत वैधता अतीत की परम्पराओं की पवित्रता में स्थापित विश्वास पर तथा जो इनके अधीन सत्ता के प्रयोग को वैधता देता है, पर निर्भर करती है।

(स) करिश्माई सत्ता

इस प्रकार की सत्ता एक व्यक्ति के आदर्श चरित्र या पवित्रता के गुण के प्रति प्रतिबद्धता पर तथा उसके द्वारा निर्मित व्यवस्था पर आधारित होती हैं। उदाहरण के लिये महात्मा गांधी को करिश्माई सत्ता कहा जा सकता हैं। इस प्रकार की सत्ता ना ही नियमों एवं

अधिनियमों की तार्किता पर आधारित होती है और ना ही दीर्घकालिक परम्पराओं पर अपितु कुछ व्यक्तियों के द्वारा किसी अन्य व्यक्ति की भक्ति पर निर्भर करती हैं, जो अपनी चारित्रिक विशेषताओं, गुणों तथा ईमानदारी के आधार पर दूसरों को प्रभावित करने की योग्यता रखता हैं। करिश्माई सत्ता नेताओ की अपील पर निर्भर करती है जो कि अपनी असाधारण योग्यता, चाहे वह नैतिक हो, वीरतापूर्ण या धार्मिक, के कारण ईमानदारी/निष्ठा का दावा करते हैं।

धर्म का समाजशास्त्र

'*प्रोटेस्टेंट इथिक्स एंड द स्प्रिट ऑफ कैपिटल्जिम*' नामक वेबर का लेख धर्म के समाजशास्त्र के क्षेत्र में एक क्लासिकल अध्ययन माना जाता हैं। इस कार्य में, वेबर प्रदर्शित करने का प्रयास करते हैं कि कार्ल मार्क्स का यह विचार कि आर्थिक कारक सभी सामाजिक घटनाओं का निर्धारक कारक हैं, गलत हैं। इस पुस्तक में वेबर धार्मिक मूल्यों तथा आर्थिक हितों के बीच सम्बन्धों का विश्लेषण करते हैं। वह यह जानना चाहते थे कि क्या प्रोटेस्टेंट धर्म की आचार संहिता तथा पूंजीवाद के मूल तत्वों के बीच कोई आवश्यक सम्बन्ध हैं। वेबर तर्क देते हैं कि कैल्विनवादी प्रोटेस्टेंट समूहों के धार्मिक विचारों ने पूंजीवादी प्रणाली को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं।

वेबर कहते हैं कि आधुनिक पूंजीवाद लाभ को आर्थिक गतिविधि के एक आवश्यक तत्व के रूप में देखता है, तथा उच्छी मात्रा में लाभ प्राप्त करने का प्रयास करता हैं। पूंजीवाद के मूल को परिभाषित करने के बाद, वेबर का लक्ष्य इस मूल के स्त्रोत को समझना है तथा वह इसकी व्याख्या के लिए प्रोटेस्टेंटवाद की तरफ वापिस लौटते हैं। प्रोटेस्टेंटवाद 'आहवान' की अवधारणा को प्रस्तुत करता हैं, जो एक वैश्विक गतिविधि को एक धार्मिक चरित्र प्रदान करता हैं। वह यह कहना जारी रखते हैं कि नये प्रोटेस्टेंट धर्म के अनुसार, एक व्यक्ति जितने अधिक उत्साह के साथ सम्भव हो सके, सांसारिक जीविका/व्यवसाय का पालन करने के लिए धार्मिक रूप से कटिबद्ध हैं। एक व्यक्ति इस विश्व दृष्टि के अनुसार अधिक धन का संग्रह करना चाहता हैं। चूंकि नये धर्म ने आनन्द–विलास की वस्तुओं पर खर्च करने, उपहार या दान देने जैसे कार्यों को प्रतिबन्धित कर दिया, तो केवल एक विकल्प बचा संचित धन को पुनः आर्थिक गतिविधियों अर्थात् पूंजीवाद में निवेश करना। धार्मिक मूल्यों का यह विशिष्ट संयोजन प्रोटेस्टेंट धर्म की आचार संहिता को निर्मित करता हैं अर्थात् सम्पत्ति के असीमित संग्रह तथा सुख–साधनों से वंचित होने से पूंजीवाद को बढ़ावा मिलता हैं।

वेबर यह नहीं मानते हैं कि प्रोटेस्टेंटवाद पूंजीवाद के मूल का कारण था बल्कि यह उसके महत्वपूर्ण कारकों में से एक था। वह यह भी मानते हैं कि पूंजीवाद स्वयं धार्मिक विचारों के विकास पर प्रभाव डालता हैं। उनके सामाजिक क्रिया से सम्बन्धित प्रसिद्ध विचारों के अलावा सत्ता, पूंजीवाद तथा धर्म के विचार भी महत्वपूर्ण हैं। वेबर ने अनेक

विषयों पर जैसे नौकरशाही, सामाजिक स्तरीकरण तथा पद्धतिशास्त्रीय विषयों जैसे आदर्श प्रारूप एवं वर्हस्टन इत्यादि पर भी लिखा। यह कहना गलत नहीं होगा कि वेबर का लेखन केवल आधुनिक समाजशास्त्र का आधार निर्मित करने में ही सहायता नहीं करता अपितु इसका प्रभाव राजनीति, धर्म तथा अर्थव्यवस्था पर भी देखा जा सकता हैं।

गतिविधि–4

1 नौकरशाही पर वेबर के विचारो को पढिये तथा नौकरशाही की प्रमुख विशेषताओं की एक सूची बनाईये।
2 अपने आस–पास होने वाली घटनाओं तथा उपस्थित संगठनों के आधार पर सत्ता के तीन प्रकारों का उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।
3 पूंजीवाद पर मार्क्स, दुर्खाइम तथा वेबर के विचारों की तुलना कीजिए।

निष्कर्ष

अगस्त कोंत, कार्ल मार्क्स, एमिल दुर्खाइम तथा मैक्स वेबर ऐसे चार विचारक हैं जिन्हें समाजशास्त्र में पथप्रदर्शक की संज्ञा दी जाती हैं। अगस्त कोंत ने प्रत्यक्षवाद का विचार प्रस्तुत किया तथा समाजशास्त्र के अनुशासन को उत्पन्न किया और निरन्तरता प्रदान की। कार्ल मार्क्स के विचारो ने विश्व के अनेक भागों में साम्यवादी क्रांतियों को उत्पन्न किया। एमिल दुर्खाइम को समाजशास्त्र का प्रथम प्रोफेसर माना जाता है, उन्होंने समाजशास्त्र का अध्ययन करने के नियम प्रस्तुत किये। तथा वेबर के पश्चिमी समाजों के इतिहास के विश्लेषण ने हमें एक विशिष्ट व केन्द्रीय बल के प्रति जागरूक किया, जिसने सभी पश्चिमी संस्थाओं, जैसे आर्थिक, राजनीतिक, धर्म, परिवार, स्तरीकरण तथा संगीत, तार्किकता इत्यादि को आकार दिया।

शब्दावली

सत्ताः यह शक्ति का एक विशिष्ट स्वरूप है जिसे सामाजिक व्यवस्था के प्रतिमानों द्वारा समर्थन प्राप्त होता है तथा सामान्यतः जो इसमें सहभागिता करते हैं उनके द्वारा इसे वैधता प्राप्त होती हैं।

आहवानः यह एक धार्मिक अवधारणा हैं–ईश्वर द्वारा निर्धारित एक कार्य, अक्सर इसका प्रयोग किसी दी गई सांसारिक गतिविधि से सम्बंधित कार्य या धार्मिक महत्व के एक व्यवसाय या कार्य की विवेचना के लिए किया जाता हैं।

वर्गः — व्यक्तियों का एक समूह या श्रेणी जिनका उत्पादन के साधानों से समान सम्बंध होता हैं।

वर्ग चेतनाः — एक वर्ग के सदस्यों के बीच अपने समान हितों के प्रति जागरूकता।

वर्ग संघर्षः — गैर–स्वामी तथा स्वामी वर्गों के बीच सदैव हितो का संघर्ष होता हैं। हितो का यह संघर्ष दो वर्गों के बीच वर्ग–संघर्ष उत्पन्न करता हैं। हांलाकि वर्ग–संघर्ष तब और अधिक बढ़ जाता हैं जब लोगो के बीच वर्ग चेतना उत्पन्न होती हैं।

तथ्यः — जो कुछ भी अस्तित्व में हैं तथा जिसको कोई भी जांच सकता हैं, तथ्य कहलाता हैं।

ऐतिहासिक भौतिकवादः — इतिहास को समझने के लिए लोगों के सम्बंधों को उत्पादन के साधनों के संदर्भ में जानना।

यांत्रिक एकताः — एक समाज के सदस्यों के बीच उनमें समानता के आधार पर एकता की भावना होना।

सावयवी एकताः — एक समाज के सदस्यों के बीच विषमरूपता के कारण उनमें अन्तःनिर्भरता के आधार पर एकता की भावना होना।

प्रत्यक्षवादः — इस परिप्रेक्ष्य में, यह माना जाता था कि समाज का संचालन कुछ निश्चित नियमों के आधार पर किया जाता हैं, जिन्हे खोजा जा सकता हैं।

तार्किकताः — तथ्यों या तर्क के आधार पर तर्कसंगत होने का गुण या स्थिति हैं।

समाजिक क्रियाः — यह एक क्रिया है जो व्यक्तियों द्वारा की गई क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के द्वारा अस्तित्व में आती हैं। यह 'सामाजिक' होती हैं यदि व्यक्ति इस क्रिया को दूसरों के साथ व्यवहार के संदर्भ में करे।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 1–15 शब्दों में दीजिए:

1. एक अकादमिक अनुशासन के रूप में समाज का औपचारिक अध्ययन किस देश में तथा किस शताब्दी में प्रारम्भ हुआ ?
2. उन तीन कारको के नाम बताइये जो एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप में समाजशास्त्र के विकास के लिए उत्तरदायी हैं।
3. नवजागरण से सम्बद्ध दो विचारकों के नाम बताइये।
4. फ्रांसीसी क्रांति किस वर्ष अस्तित्व में आयी ?
5. 'प्रत्यक्षवाद' शब्द से क्या अभिप्राय हैं ?
6. किसने समाजशास्त्र की दो शाखाओं सामाजिक स्थितिकी और सामाजिक गतिकी की चर्चा की ?
7. अगस्त कोंत के तीन चरणों के नियम को चार्ट द्वारा प्रस्तुत कीजिए।
8. कार्ल मार्क्स का वर्ग का सिद्धांत किस निर्धारण्वाद पर आधारित हैं ?
9. '*कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो*' पुस्तक किसने लिखी हैं ?
10. कार्ल मार्क्स द्वारा प्रस्तुत सामाजिक परिवर्तन के चरण कौन से हैं ?
11. किसने समाज में उपस्थित एकता की प्रकृति के आधार पर समाज को वर्गीकृत किया हैं ?
12. एमिल दुर्खाइम द्वारा प्रस्तुत एकता के दो प्रकार बताइये।
13. मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत सामाजिक क्रिया के प्रकारों की सूची बनाइये।
14. मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत सत्ता के प्रकार बताइये।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 30–35 शब्दों में दीजिए:

1. नवजागरण किसे कहते हैं ?
2. धर्मशास्त्रीय तथा तत्वशास्त्रीय चरणो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. जीववाद से आप क्या समझते हैं ?
4. कार्ल मार्क्स की वर्ग की परिभाषा दीजिए।

5. वर्ग चेतना से आप क्या समझते हैं ?
6. ऐतिहासिक भौतिकतावाद को परिभाषित कीजिए।
7. समाजिक तथ्य वर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
8. सावयवी एकता पर चर्चा कीजिए।
9. ज्वैकरेशनल क्रिया से आप क्या समझते हैं ?
10. भावनात्मक क्रिया किसे कहते हैं ?
11. सत्ता को परिभाषित कीजिए।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 75–85 शब्दों में दीजिए:

1. अगस्त कोंत द्वारा प्रतिपादित तीन चरणों के नियम की विवेचना कीजिए।
2. यांत्रिक एकता की विशेषताओं की चर्चा कीजिए।
3. सावयवी एकता की विशेषताओं की चर्चा कीजिए।
4. धर्मशास्त्रीय एवं तत्वशास्त्रीय चरण में अंतर कीजिए।
5. क्या आप सोचते हैं कि निकट भविष्य में साम्यवादी समाजों द्वारा पूॅंजीवाद को विस्थापित कर दिया जायेगा ?

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 200–250 शब्दों में दीजिए:

1. क्या समाजशास्त्र एक पूर्ण विज्ञान के रूप में विकसित हुआ जिसकी कल्पना अगस्त कोंत ने की थी?
2. मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धांत बताइये।
3. रूस और चीन की साम्यवादी क्रांतियों पर एक टिप्पणी लिखिए।
4. समाजशास्त्र में दुर्खाइम का योगदान बताइये।
5. वेबर द्वारा प्रस्तुत सामाजिक क्रिया के प्रकारों की चर्चा कीजिए।
6. वेबर किस प्रकार धर्म को आर्थिक क्रियाओं से जोड़ते हैं ?

सहायक पुस्तकें

अब्राहम, एम. फ्रांसिस, 1997, *मार्डन सोशियोलॉजिकल थियोरी:* एन इन्ट्रोडेक्शन, नई दिल्लीः आक्सफोर्ड प्रेस।
बेनेडिक्ट, रूथ एफ., 1946, *पैटनर्स ऑफ क्लचर,* नई दिल्लीः पेंग्विन।
बोटोमोर, टी. बी., 1987, *सोशियोलॉजी:* ए गाइड टू प्रॉबलम्स एंड लिटरेचर, थर्ड एडीशन), लंदनः एलन एंड अनविन।

ब्रूम, लियोनार्ड, फिलिप सेल्जनिक एवं डोर्थी ब्रूम डारोच, 1991, *सोशियोलॉजी,* नई दिल्लीः हार्पर एंड रॉ पब्लिशर्स।

कैलीनिकोस, एलेक्स, 1999, *सोशल थियोरीः ए हिस्टोरीकल इंट्रोडक्शान,* कैम्ब्रिजः पॉलिटी प्रेस।

कोकलिन, जॉन, ई, 1984, *सोशियोलॉजीः एन इन्ट्रोडक्शान,* न्यू यार्कः मैक्मिलन पब्लिशिंग कंपनी।

कूले, सी. एच. 1983, *हयूमन नेचर एंड द सोशल आर्डर,* न्यू जर्सीः ट्रांसेक्शन पब्लिशर्स।

दासगुप्ता, समीर एंड पालोमी साहा, 2012, *एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशियोलॉजी,* नई दिल्लीः पियर्सन।

डेविस, किंग्सले, 1981, *हयूमन सोसॉयटी,* नई दिल्लीः सब्जेक्ट पब्लिकेशंस।

फगान, ब्रायन एम., 1992, *पियुपल ऑफ द अर्थ,* लंदनः हार्पर कालिंस।

घोष, सुरेश चंद्र, 2009, *द हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन मार्डन इंडिया:* 1757–2007, नई दिल्लीः ओरिएंट ब्लैकस्वान।

गिंडेस, एंथनी, 1993, *सोशियोलॉजी,* कैमब्रिजः पॉलिटी प्रेस।

गिसबर्ट, पी., 1995, *फंडामेंटलस ऑफ सोशियोलॉजी,* मुम्बईः ओरिएंट लांगमेन।

गुप्ता, दीपांकर, 1992, *पॉलिटिकल सोशियोलॉजी एंड इंडियन कंटम्पोरेरी ट्रेंडस,* नई दिल्लीः ओरिएंट लांगमेन।

हयूगेस, जॉन ए., वेस शेरोक एंड पीटर जे. मार्टिन, 1995, *अंडरस्टेडिंग क्लेसिकल सोशियोलॉजीः मार्क्स, वेबर, दुर्खाइम, सेज पब्लिकेशंस:* लंदन।

इग्नू, *द स्टडी ऑफ सोसायटी,* इंदिरा गांधी नेशनल ओपन यूनीवर्सटी, इकाई 9 'एजेंसीज ऑफ सोशलाइजेशन'।

इग्नू, *सोसायटी इन इंडिया,* इंदिरा गांधी नेशनल ओपन यूनीवर्सटी।

जानसन, एलेन जी., 1999, *द ब्लैकवेल डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी,* ऑक्सफोर्ड, यू केः ब्लैकवेल पब्लिशर्स लिमिटेड।

जानसन, हेरी, एम., 1960, *सोशियोलॉजी,* नई दिल्लीः एलाइड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।

क्लख्खन, क्लाइड, 1949, *मिरर ऑफ मैन,* न्यू यार्कः मैक्ग्रा हिल बुक कंपनी।

लीच, एडमंड, 1968, *'सोशल स्ट्रक्चर', इन डेविड आई. सिल्स (संपादित) इंटरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सांइसेस,* न्यू यार्कः मैक्मिलन कंपनी एंड द फ्री प्रेस।

लिंटन, राल्फ, 1936, *द स्टडी ऑफ मैन,* न्यू यार्कः डी. एपिलटन सेंचुरी कॉम।

मैकाइवर, आर. एम. एंड सी. एच. पेज, 1992, *सोसायटीः एन इंट्रोडक्ट्री एनालिसेस,* मद्रासः मैक्मिलन लिमिटेड।

मदान, टी. एन.(संपादित) 1992, *रिलिजन इन इंडिया,* नई दिल्लीः आक्सफोर्ड यूनीवर्सटी प्रेस।

मार्शल, गार्डन, 1998, *ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी,* नई दिल्लीः आक्सफोर्ड यूनीवर्सटी प्रेस।

मॉरीसन, के., 1995, *मार्क्स दुर्खाइम वेबरः फोर्मेशनस ऑफ मॉर्डन सोशल थॉट,* सेज पब्लिकेशंसः लंदन।

मुखर्जी, डी. पी., 1948/1979, *सोशियोलॉजी ऑफ इंडियन कल्चर,* जयपुरः रावत पब्लिकेशंस।

एनसीईआरटी, 2006, *इंट्रोडयूसिंग सोशियोलॉजी– ए टैक्सटबुक फार क्लास XI*, नई दिल्लीः नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग।

एनसीईआरटी, 2006, *सोशियोलॉजी– एन इंट्रोडक्शनः ए टैक्सटबुक फॉर क्लास XI*, नई दिल्लीः नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग।

एनसीईआरटी, 2006, *अंडरस्टेंडिग सोसायटी– ए टैक्सटबुक फॉर क्लास XI*, नई दिल्लीः नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग।

निओस, *सोशियोलॉजी टैक्सटबुक, सीनियर सेकेण्डरी कोर्स),* नई दिल्लीः नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओपन स्कूलिंग।

आगबर्न डब्लयू. एफ. एंड एम. निमकॉफ, 1979, *ए हैंडबुक ऑफ सोशियोलॉजी,* नई दिल्लीः इमासका पब्लिशिंग हाउस।

पेहल, आर. ई., 1984, *डिविजन ऑफ लेबर,* आक्सफोर्डः बेसिल ब्लैकवेल।

पाण्डेय, गोविंद चंद्र, 1984, *फाउडेशंस ऑफ इंडियन क्लचर,* नई दिल्लीः बुक्स एंड बुक्स।

प्रतीची एजुकेशन रिर्पोट, 2002, नई दिल्ली, द प्रतीची ट्रस्ट।

रेडक्लिफ ब्राउन, ए. आर., 1965, *स्ट्रक्चर एंड फंक्शन इन प्रिमिटिव सोसायटीः एसेज एंड एड्रेसेस*, गलेनकोः फ्री प्रेस।

राव, सी. एन. शंकर, 2008, *सोशियोलॉजी*, नई दिल्लीः एस. चंद एंड कंपनी लिमिटेड।

राव, सी. एन. शंकर, 2006, *प्रिंसीपलस ऑफ सोशियोलॉजी विद एन इंट्रोडक्शन टू सोशल थॉट)*, नई दिल्लीः एस. चंद एंड कंपनी लिमिटेड राम नगर।

रावत, एच. के., 2009, *सोशियोलॉजी– बेसिक कन्सेप्टस*, नई दिल्लीः रावत पब्लिकेशंस।

रिट्जर, जार्ज, एंड बेरी स्मार्ट, 2003, *हैंडबुक ऑफ सोशल थियरी*, नई दिल्लीः सेज पब्लिकेशंस।

शाह, ए. एम., 1998, *फैमली इन इंडियाः क्रिटिकल एसेज*, हैदराबादः ओरिएंट लांगमेन।

सिंह, रेनु, 2014, *इंट्रोड्यूसिंग सोशियोलॉजी (क्लास XI)*, जवाहर नगर, नई दिल्लीः विवेक प्रकाशन।

टॉयलर, एडवर्ड बी., 1871/1958, *प्रिमिटिव क्लचर* 2 अंक, लंदनः जॉन मरे।

ओबेरॉय, पैट्रीशिया, 1993, *फैमिली, मैरिज एंड किनशिप*, नई दिल्लीः एशिया पब्लिशिंग हाउस।

वर्सले, पीटर, 1970, *इंट्रोड्यूसिंग सोशियोलॉजी*, लंदनः पेंग्विन बुक्स।